सोमसी

10/91

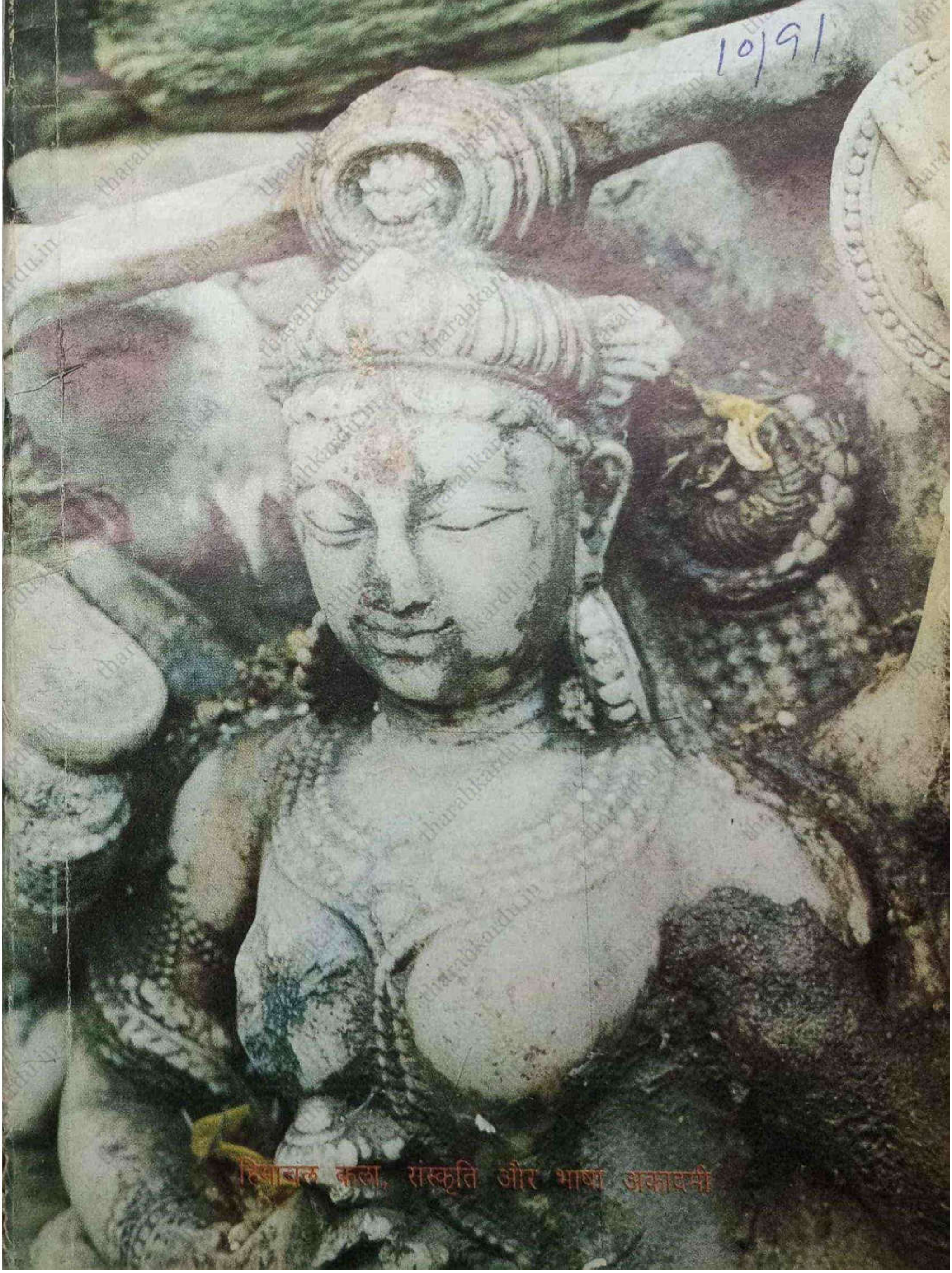

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी

हिमाचल अकादमी के प्रकाशन

क्रमांक	पुस्तक का नाम	विवरण	मूल्य
हिन्दी :-			
1.	श्यामला	हिन्दी काव्य संकलन	15.00
2.	तीन लोक नाटिकाएं	लोककथाओं पर आधारित लोक नाटिका-संग्रह	5.00
3.	हिमाचल के संस्कार गीत	विभिन्न जनपदों में प्रचलित संस्कार गीत	20.00
4.	मणिमहेश	"मणिमहेश" बंगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद	20.00
5.	हिमाचल प्रदेश लोक-जीवन और परम्पराएं	लोक साहित्य एवं जनजातीय संस्कृति से सम्बन्धित निबन्ध	20.00
6.	साहित्यकार-कलाकार-विवरणिका (सचित्र)	हिमाचली कलाकारों व साहित्यकारों का जीवनवृत्त व उपलब्धियां	30.00
7.	परिवेश	हिन्दी-कहानी-संग्रह	40.00
8.	कथा सरवरी (भाग-3)	जनजातीय लोक कथाएं	20.00
9.	सिरमौरी लोक साहित्य	डॉ० खुशीराम गौतम	60.00
10.	मण्डयाली लोकगीत-एक अध्ययन	डॉ० कांशीराम आत्रेय	60.00
11.	गणेश सिंह बेदी (साहित्यिक मूल्यांकन)	डॉ० मीनाक्षी शर्मा	60.00
संस्कृत :-			
1.	ऋतम्भरा	संस्कृत काव्य संग्रह	6.00
2.	इन्दुकाव्यम्	सिरमौर और कांगड़ा की ऐतिहासिक गाथाओं पर आधारित काव्य	15.00
उर्दू :-			
1.	तरतीब	हिमाचल के उर्दू शायरों	

वर्ष : 24
अंक : 4
पूर्णांक : 96
अक्तूबर, 1991

सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति व साहित्य की
त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक
डॉ. बंशीराम शर्मा

सम्पादन-सहयोग
सरोज सांख्यायन
डॉ० कर्म सिंह
कु० जयवन्ती चौहान

प्रूफ़शोधक
निर्मल कौशल

हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी
संगरमल भवन, क्लिफ़-एण्ड-एस्टेट
शिमला (हि० प्र०)

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं से सम्पादक
का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्रकाशक : सचिव
हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी
शिमला-171 001

मूल्य : 3/- रुपये एक प्रति
12/- रुपये वार्षिक

आवरण एवं पारदर्शियां
हिमाचल अकादमी-संग्रहालय

प्राप्ति स्थान :
हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी
संगरमल भवन, क्लिफ़-एण्ड-एस्टेट, शिमला-171001

मुद्रक : भारतेन्दु प्रिंटिंग प्रैस, लोअर बाज़ार, शिमला-1 दूरभाष : 3452

विषय सूची

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	निकोलस रोरिक समन्वयात्मक दर्शन का महान् चितेरा	किशोरी लाल वैद्य	1
2.	ज़िला चम्बा की पांगी-घाटी की प्रजा-प्रणाली	अमर सिंह रणपतिया	6
3.	उर्दू के मशहूर शायर विशन दास गुलशन	डॉ० रतन चन्द शर्मा	14
4.	कहलूरी व उसकी स्वर भाषा ध्वनियां	सतीश कश्यप	23
5.	किन्नौर का दर्शनीय बौद्ध गोन्पा टाशीगंग	चन्द्र चीला नेगी	37
6.	ब्रजेश्वरी देवी का नगरकोट धाम मन्दिर	डॉ० वेद प्रकाश अग्नि	40
7.	रोहड़ू क्षेत्र का देव उत्सव प्रतिष्ठा	गंगादत्त शास्त्री 'वेदाचार्य'	45
8.	रोहतांग और साच दर्रे के बीच प्रकृति एवं संस्कृति का अनूठा समन्वय	बीरबल शर्मा	48
9.	प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत बांठड़ा-संक्षिप्त परिचय	रमेश जसरोटिया	63
10.	मण्डी की देव संस्कृति का ऐतिहासिक दस्तावेज	भगवान देव "चैतन्य"	72
11.	शिमला में आयोजित कला उत्सव	डॉ० अजय कुमार सिंह	75
12.	अकादमी की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियां		79

सचिव की कलम से

संस्कृति का सागर गहरा है। इस में मनुष्य तिनके सा डूबता उतराता है। वास्तव में संस्कृति को किनारे बैठ कर समझा बूझा नहीं जा सकता। इसे जानने के लिए डूब जाना जरूरी है। यह ढूंढ कर पाने वाली चीज़ है जिसके लिए सारे जग को हण्डणा पड़ता हैं। संस्कृति के अन्वेषक को कबीर की तरह होना चाहिए, गहरे में उतरने वाला और साथ में फक्कड़, अलमस्त।

संस्कृति का संग्रह इसके अन्वेषण में प्रथम सोपान है। संस्कृति तो फैली है अपने मूल रूप में। इसे ज्यों का त्यों उतारना, बिना किसी पूर्वाग्रह के, एक कठिन कार्य है। यदि इसे कैमरे की आंख की तरह मात्र उतार लिया जाता है तो यह शोधकर्त्ताओं के लिए प्रामाणिक आधार सामग्री बन जाती है।

'सोमसी' पत्रिका के माध्यम से यही कार्य किया जा रहा है। विविध विषयों पर कुछ परिचयात्मक, कुछ विवरणात्मक, कुछ शोधात्मक लेख देने का प्रयास रहता है जो कालान्तर में सन्दर्भ के तौर पर प्रयुक्त होते हैं। इस अंक में भी भाषा तथा संस्कृति पर कुछ उपयोगी सामग्री दी जा रही है।

सुदर्शन वशिष्ठ

जन्म तिथि ९ अक्तूबर पर विशेष

निकोलस रोरिक समन्वयात्मक दर्शन का महान् चितेरा

किशोरी लाल वैद्य

अक्तूबर ९, १८७४ को सेंट पिटर्सबर्ग (रूस) में जन्मे और १३ दिसम्बर, १९४७ को कुल्लू घाटी (हिमाचल प्रदेश) में प्राणोत्सर्ग करने वाले निकोलस रोरिक अद्‌भुत प्रतिभा के स्वामी थे। उनका नाम इस शताब्दी के एक महान् चित्रकार के रूप में सर्व विदित है लेकिन जो व्यक्ति उनके जीवन-चरित से न्यूनाधिक परिचित हैं, वे जानते हैं कि उन्होंने एक कलाकार के अतिरिक्त लेखक, विद्वान, पुरातत्त्ववेत्ता, अन्वेषक आदि रूपों में भी अपनी सशक्त पहचान बनाई है और इन सब से ऊपर यदि हम कहें कि वे हिमालय की रूपश्री के अनन्य चितेरे थे तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

रोरिक बाल्यकाल से ही विलक्षण प्रतिभा का परिचय देने लगे थे। उन्होंने कला, इतिहास, दर्शन, विधि तथा पुरातत्त्व में एक साथ शिक्षा पाई थी और आगे चलकर उन्होंने अपने विशिष्ट एवं मौलिक अवदान से ज्ञान-विज्ञान के इन सभी क्षेत्रों को समृद्ध किया।

रोरिक के व्यक्तित्व और कृतित्व के निर्माण में विविध क्षेत्रों में उनकी रूचि का योगदान था। उन्होंने रूस, यूरोप, मध्य एशिया, मंगोलिया, तिब्बत, चीन, जापान आदि की विस्तृत यात्राएं की थीं। इन दोनों ही बातों से उनके जीवन-दर्शन को

एक सार्वभौमिक दृष्टि मिली और उन्होंने अपने चिन्तन से, जो उनके लेखन और कला में स्वाभाविक रूप से प्रतिबिम्बित हुआ हैं, पूर्व और पश्चिम के मध्य एक सेतु का कार्य किया। जब हम रोरिक के फलकों पर ईसाई, हिन्दू और बौद्ध धर्मों से सम्बन्धित किन्हीं विषयों का चित्रण पाते हैं तो यह सहज ही समझा जा सकता है कि उनकी धार्मिक मान्यताएं किसी एक धर्म तक सीमित नहीं थी बल्कि विभिन्न धर्मों के अनुशीलन ने उन्हें एक विश्वजनीन दृष्टि दी थी। उनकी पत्नी तो गीता की नियमित पाठक थीं। वे जब अपने पति के साथ यात्राओं पर निकलतीं, तब भी गीता की प्रति अपने साथ रखना न भूलती।

एक चित्रकार के रूप में रोरिक को सर्वाधिक ख्याति मिली। उन्होंने आरम्भ में रूस में भित्तिचित्रों का अंकन किया। अनेक संगीत और नृत्य नाटिकाओं के लिए रंगमंच की सज्जा दी। रोरिक ने स्वतन्त्र चित्रों के रूप में लगभग सात हजार कृतियों का सृजन किया। उनकी ये कृतियां विश्व के प्रमुख संग्रहालयों में संग्रहीत हैं। इनमें से अनेक संग्रहालयों में तो उनकी कृतियों के लिए अलग कला वीथियां या कला कक्ष देखे जा सकते हैं। भारत के ही अनेक प्रमुख संग्रहालयों में रोरिक के चित्र, हिमालय-दर्शन विषयक कृतियां- प्रदर्शित हैं। इन संग्रहालयों में कला-भवन बनारस, इलाहाबाद संग्रहालय तथा त्रिवेन्द्रम संग्रहालय में तो रोरिक के चित्रों के लिए अलग कक्षों की व्यवस्था की गई है।

निकोलस रोरिक का चिन्तन केवल फलकों में ही व्यक्त नहीं हुआ है, उन्होंने संस्कृति, दर्शन एवं सर्व-मानवीय विषयों पर २७ ग्रन्थों की रचना की और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में असंख्य लेख लिखे। उनके ग्रन्थों में 'एटलाई हिमालय' और 'हिमालय-अबोड ऑफ लाइट' दो ऐसे प्रकाशन हैं जिनमें हिमालय से उनके लगाव का परिचय मिलता है। इन ग्रन्थों के अध्ययन और अनुशीलन से हिमालय सम्बन्धी उनकी चित्र-कृतियों को समझने-परखने में भी सहायता मिलती है।

रोरिक ने सन् १९२४ से अपनी हिमालय-यात्रा आरम्भ की थी और वे तिब्बत गये। इस यात्रा में उन्हें चार वर्ष का समय लग गया और वे १९२८ में वापिस आए। उस वर्ष उन्होंने हिमालय की ही गोद में बसने का निश्चय किया और इस उद्देश्य से उन्हें कुल्लू घाटी में नगर नामक वह एकान्त स्थली पसन्द आई जो शताब्दियों तक कुल्लू राज्य की राजधानी भी रह चुकी थी। नगर से उन्होंने मण्डी रियासत के राजा जोगेन्द्र सेन से वह भवन (हाल एस्टेट) खरीदा जो आज रोरिक आर्ट गैलरी के नाम से प्रसिद्ध है। इस कला-वीथिका में रोरिक की 32 जलरंगी कलाकृतियां संग्रहीत हैं जिनमें हिमालय के रूप सौन्दर्य का बड़ा ही मनोहारी एवं आलौकिक चित्राण देखने को मिलता है।

इस स्थान पर रोरिक ने अपने जीवन के अन्तिम दो दशक व्यतीत किये थे। इस दौरान उन्होंने हिमालय की विस्तृत यात्राएं कीं और हिमालय की रूपश्री का बहुविध चित्रांकन किया। विशाल हिमालय के रहस्यमय रूप सौन्दर्य को उद्घाटित करती सैंकड़ों छवियां रोरिक की कलम से फलकों पर उभरी हैं। इन कलाकृतियों से कला-जगत समृद्ध हुआ है। इन कलाकृतियों में हिमालय के मात्र पर्वतीय भूदृश्य ही अंकित नहीं हुए हैं। वास्तव में हिमालय भारतीय दर्शन, साहित्य और मनीसा का का एक अक्षय स्रोत है हिमालय की रूप छवि के चित्राण में चित्रकार को हिमालय सम्बन्धी भारतीय वाङ्मय की चेतना को अपनी तूलिका से अंकित करने में अदभूत सफलता प्राप्त हुई है। हिमालय का ऐसा विराट दर्शन किसी सत्त चिन्तन-मनन के बिना सम्भव ही नहीं है।

रोरिक की सांस्कृतिक चेतना बहुत व्यापक थी। बीसवीं सदी की वैज्ञानिक प्रगति के नभोमण्डल में युद्ध और विनाश के मंडराते मेघों को वे एक मानवतावादी सरोकार से देख रहे थे। इस दृष्टि से उन्होंने विश्व भर की सांस्कृतिक निधि के संरक्षण हेतु 'रोरिक पैक्ट एण्ड बैनर ऑफ पीस' नामक एक ऐसे दस्तावेज़ व प्रतीक-चिह्न का प्रणयन किया जिसके प्रति भारत

सहित विश्व के ३६ राष्ट्रों ने अपनी स्वीकृति प्रकट की थी।

रोरिक विश्व की अनेक प्रमुख कला संस्थाओं से सम्बन्द्ध रहे। वे रूस की 'इम्पीरियल सोसाइटी फ़ार द एनकरेजमेंट ऑफ आर्ट्स' के अध्यक्ष थे। उन्होंने अमेरिका में 'यूनाइटेड आर्ट्स' जैसी महान् संस्था की स्थापना की। सुप्रसिद्ध कला संस्था 'द वर्ल्ड आफ आर्ट' के वे प्रथम अध्यक्ष थे। 'आर्कि-टेक्चुरल कौंसिस फार वीमेन' के भी वे अध्यक्ष रहे।

रोरिक को उनके जीवन-काल में ही अनेक राष्ट्रों, उनकी सरकारों, विभिन्न अकादमियों और संस्थानों ने सम्मानित किया था। अपनी कला और चिन्तन के लिए इतनी व्यापक मान्यता रोरिक के अतिरिक्त किसी अन्य कलाकार को उसके जीवन-काल में शायद ही कभी प्राप्त हुई हो। सन् १९२९ में न्यूयार्क के महानगर में अमेरिका सरकार द्वारा रोरिक के सम्मान में एक २९ मन्जिला रोरिक संग्रहालय का निर्माण हुआ था। इस में रोरिक के सैंकड़ों चित्र प्रदर्शित हैं। आज भी वहां केवल सामान्य दर्शक ही नहीं जाते बल्कि रोरिक के व्यक्तित्व और कृतित्व में रूचि रखने वाले अनेक शोधार्थी शोध-कार्य में जुटे हुए देखे जा सकते हैं।

वास्तव में रोरिक का कार्य बहुत विशाल तथा व्यापक था। सदियों में कभी एक बार ऐसी महान् विभूति का अवतरण होता है। रोरिक की प्रतिभा को लेकर सुविख्यात रूसी लेखक गोर्की ने उन्हें 'महानतम् अन्तश्चेता' कहा था। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट, गुरुवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा विश्व की अनेक जानी-मानी विभूतियों ने निकोलस रोरिक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पण्डित जवाहर लाल नेहरु ने रोरिक का जैसा स्मरण किया है, उसमें उस महान विभूति का एक संक्षिप्त लेकिन सारगर्भित चित्र हमारे सामने साकार हो उठता है। उन्होंने कहा था, "जब मैं निकोलस रोरिक के बारे में सोचता हूं तो मैं उनके विशाल क्रिया-कलाप और रचनात्मक प्रतिभा से चकित रह जाता हूं। एक महान्

कलाकार, एक महान् विद्वान तथा लेखक, पुरातत्वविद और अन्वेषक के रूप में उन्होंने मानवीय प्रयास के अनेक पहलुओं को छुआ और उन्हें प्रकाशित किया। यह कार्य अद्भुत मात्रा में हुआ—हज़ारों चित्र और उनमें प्रत्येक कला की एक महान् कृति। जब आप इन चित्रों को देखते हैं, जिनमें कितने ही हिमालय के हैं, तो आपको लगता है कि आपने इन विशाल पर्वतों की आत्मा को पा लिया है जिनकी भारत के मैदानों के ऊपर छत्रछाया पड़ी है और जो युगों से हमारी प्रहरी रहे हैं। ये हमें अपने इतिहास, अपनी विचारधारा, अपनी संस्कृति और आध्यात्मिक थाती का स्मरण कराते हैं जो केवल अतीत के भारत से ही सम्बन्धित नहीं बल्कि उसका सम्बन्ध इस भारत से है जो स्थायी है, सनातन है। निकोलस रोरिक, जिन्होंने इन विशाल फलकों में उस आत्मा को स्थापित किया है, के प्रति हमें आभार की प्रतीति होना अनिवार्य है।"

●

जिला चम्बा की पांगी-घाटी की प्रजा-प्रणाली

अमर सिंह रणपतिया

भारतीय ग्रामीण प्रशासन ऋग्वैदिक काल से ही लोक-तंत्र व्यवस्था पर आधारित था। उस समय की राज-व्यवस्था में सभा और समितियों का वर्णन उस समय के साहित्य में पढ़ने को मिलता है जिसका वर्णन आजकल के विद्वानों ने किया है सभा और समितियों को प्रजापति की दो पुत्रियां कहा है— Twin daughters of prajapati।" वे प्रजातन्त्र के ढांचे पर आधारित थीं। आधुनिक विद्वान उनकी निश्चित परिभाषा देने में असमर्थ रहे हैं। उनमें 'लुडविक' नामक एक पाश्चात्य विद्वान ने सभा को ऊपरी सदन और समिति को निम्न सदन कहा है। 'झिम्मर नामक अन्य विद्वान ने सभा को ग्रामीण 'सभा' और समिति को केन्द्रीय सदन परिभाषित किया है। भारतीय विद्वान श्री जायसवाल ने समिति को राष्ट्रीय सदन और सभा को स्थायी सदन कहा है। आज के संदर्भ में सभा एक स्थाई संस्था होगी और समिति प्रतिनिधि-सदन होगा। यह सब दलहीन प्रणाली थी जिसमें सर्वसम्मत मत को मान्यता थी। असहमति के लिए कोई स्थान नहीं था। ये संस्थाएं लोकप्रिय थीं अतः जनमानस की आत्मा उनमें वास करती थी। हर वस्तु का अपनाकाल होता है। सभा और समिति काल की समाप्ति आगामी संहिता और ब्राह्मण काल में होती नज़र आती है। सभा का इस रूप में वर्णन बाद के संहिता और ब्राह्मण काल में नहीं मिलता है जबकि समिति का वर्णन छटी और सातवीं शताब्दी ई० पूर्व के जातक साहित्य में मिलना बन्द हो गया लगता है।

छटी और सातवीं शताब्दी ई० पू० के बाद के काल में भारत में कई राजतन्त्र आए और गए। उनकी अपनी-अपनी राजनैतिक शैलियां थीं। उन के आने और जाने से भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था प्रभावित होती रही। जैसे-जैसे राजतंत्र का अंकुश बढ़ता गया वैसे-वैसे ये दुर्लभ लोक-तंत्र संस्थाएं क्षीण होती गई। कहीं-कहीं ये टिम-टिमाते दीपक भारत के उज्जवल भविष्य की आस बने रहे। कई ग्रामीण क्षेत्र यातायात के साधन सुलभ न होने के कारण किसी सीमा तक अछूत रहे और अपना पुरातन पवित्र रूप किसी न किसी रूप में सजोए रहे। इस तरह भारत के ग्रामीण क्षेत्र में पंचमुखे परमेश्वर की धारणा पीढ़ियों दर पीढ़ियों उजागर रही। लोक सरकार की देख-रेख बिना अपने सर्व-सम्मत व्यक्ति को पंच चुनते रहे और किसी असंतोष के बिना आपसी झगड़े का निपटारा करते रहे। ऐसे कार्यों के लिये न तो किसी राजा की आवश्यकता होती थी और न ही किसी कचहरी की। पंच किसी भी प्रकार के भेद भाव को ताक पर रख निष्पक्ष निर्णय देते थे। उनकी निर्णायक बुद्धि को देख लोग चका-चौंध रह जाते थे, लेकिन ये संस्थाएं इसी हद तक सीमित रह गई थीं। सभा और समितियों के अन्य लोक-कल्याण के क्षेत्र इन के अधिकार में नहीं रह गए थे। आज भी, पंचायत संस्था के होते हुए भी, गांव के बड़े (Elders) गांव के मंच पर बैठकर गांव की समस्याएं आपसी तौर पर हल करते हैं।

चम्बा राजतन्त्र के समय सन् 1945 ई० को स्टेट पंचायत एक्ट पारित हुआ जिसके अधीन कुछ परगनों को इस एक्ट के अधीन लाया गया। हिमाचल प्रदेश बनने पर प्रदेश में सन् 1953 ई० तक पंजाब पंचायत एक्ट लागू रहा तत्पश्चात् सन् 1952 को पारित हिमाचल प्रदेश पंचायत एक्ट के अधीन लाया गया जिला चम्बा में उस समय 84 पंचायतें बनी और हर परगने को पंचायत के अधीन लाया गया। इस प्रकार प्रजातन्त्र-लोकतन्त्र प्रणाली लागू हुई।

नई निर्वाचित प्रणाली के लागू होने के बाद भी लोगों में प्रचलित लोक विश्वास पर आधारित लोक-

तन्त्र प्रणालियां निजी क्षेत्र में अपने पुरातनरूप में कार्यरत रहीं। इन प्रणालियों में कुल्लू के मलाणा गांव की ज्येष्टांग और कनिष्टांग लोकतन्त्र प्रणाली अब तक जीवित है। सदन की ज्येष्टांग सभा में ग्यारह सदस्य होते हैं जिन में आठ अस्थाई और तीन स्थाई होते हैं। स्थाई सदस्यों में जमलु देवता का कारदार, पुजारी और गूर होते हैं। आठ अस्थाई सदस्य कुल चार चुग (वंश) के दो-दो सदस्य चुने जाते हैं जो अस्थाई होते हैं। उन्हें 'जेठेर' कहा जाता है और किसी समय भी निकाले जा सकते हैं। निम्न सदन कनिष्टांग में हर परिवार का एक-एक सदस्य सहयोजित किया जाता है। देवता का निर्णय सर्वोपरि होता है। मलाणा गांव दूर दुर्गम पर्वतों के मध्य अवस्थित एक मात्र गांव है जहां पहुंचने के लिए सदा बर्फ से ढके चन्द्रखणी दर्रे को लांघ कर पहुंचना पड़ता है। इस गांव का जमलु देवता एक-मात्र शासक और सहारा है। यद्यपि आज सरकार की ओर से कई आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं परन्तु लोगों की आस्था अपनी पुरातन प्रजातन्त्र प्रणाली में और अपने लोक-देवता के प्रति अकाट्य है।

चम्बा का जन-जातीय क्षेत्र पांगी भी एक कठिन क्षेत्र है जहां पंगवाल लोग अपने कई लोक-विश्वासों को संजोय हुए हैं। आज पंगवाल जन-जाति को कई आधुनिक सुविधाएं मिल चुकी हैं, जिन में यातायात में भी कुछ सुधार हुआ है। आज से बहुत पहले चम्बा-राजतन्त्र के समय गांगी वजारत पश्चिम में गुलाबगढ़ (काफी समय तक छत्रागढ़) से पूर्व में लाहौल के थिरोट नाले तक फैली थी। उस समय दो संस्कृतियां (पंगवाल और लाहौला) आस-पास रहतीं थीं। छत्रगढ़ नगर को राजा छत्रसिंह (1664-1690 ई०) ने आस-पास के पड्डर इलाकों को विजित कर अपने राज्य में मिलाया और बसाया। छत्रगढ़ नगर उस समय मध्य एशिया के मार्ग में प्रसिद्ध व्यापार का केन्द्र था। उस समय मध्य एशिया के लिये नूरपुर, चम्बा साहो (द्राटी पास) से होकर पांगी छत्रागढ़-लद्दाख और मध्य एशिया के मार्ग में प्रसिद्ध व्यापार का केन्द्र (Emporium of Central Asia) माना जाता था। (संदर्भ गैजिटिअर आफ चम्बा)। 1836 ई०

को डोगरों के आक्रमण के कारण यह नगर जम्मू काश्मीर राज्य में सम्मिलित हुआ जिसे तब से अब तक गुलाबगढ़ के नाम से जाना जाता है। अब पश्चिम सीमा सिकुड़ कर संसारी नाला तक रह गई थी। पूर्व में सन् 1980 ई० में लाहौल स्पिति जिला बनने के कारण रोहली तक का पूरा क्षेत्र लाहौल जिला में मिला दिया गया (अब पांगी की सीमा रोहली तक सीमित हो गई। अब रोहली तक बस से और पुर्थी गांव तक यह क्षेत्र जीप से जुड़ गया है। पांगी के केन्द्र किलाड़ से साचजोत की ओर 14/16 कि० मी० की दूरी तक अब जीप चलती है। किलाड़ पुर्थी सड़क बड़े वाहनों के लिये निर्माणाधीन है। चम्बा से एक मात्र मार्ग साच-पास (14454) से होकर पांगी जाता है जिस पर अब घोड़े-खच्चर चलने लगे हैं। अन्य 'पास' कठिन हैं।

उस समय ऐसे दुर्गम क्षेत्र में रहने के कारण लोग अपने पर निर्भर रहना जानते थे। अपने देवी-देवताओं और अपने संगठन के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा होना स्वाभाविक है। जब सर्दियों में बर्फबारी हो जाती तो लोगों का एकमात्र सहारा देवी-देवता होते या भाई चारा। यही कारण है कि आज पंचायत और सरकारी सुविधाएं होते हुए भी 'प्रजा' के फैसले को सर्वोपरि रखा जाता है। 'प्रजा प्रणाली' को जीवित रखना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। पंचायत और 'प्रजा-प्रणाली में किसी प्रकार का संघर्ष नहीं है।

पांगी की 'प्रजा-प्रणाली' में प्रजा का सीधा-सादा अर्थ उन सभी बालिग स्त्री-पुरुष से है जो किसी गांव में रहते हैं। वे सभी उस 'ग्राउंठ' (ग्रामीण प्रजा) के सदस्य माने जाते हैं। हर ग्राम की अपनी प्रजा होती है जो उस गांव के सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था से सम्बन्धित होती है। गांव की सामूहिक समस्याओं को सुलझाने के लिए सभी सदस्यों की टजोट (बैठक) की आवश्यकता पड़ती है। समस्या पर निर्णय सर्वसम्मति से लिया जाता है। इसमें किसी प्रकार के विरोध (Discord) की गुंजाइश नहीं होती। 'टजोट'

में सभी सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती है। अतः 'टजोट' की तिथि का पूर्व निर्धारण जरुरी है। किलाड़-क्षेत्र में बैठक को 'टजोट कहा जाता है जबकि साच क्षेत्र में इसे 'माओट' (Meeting) से पुकारा जाता है। राजतन्त्र के समय पांगी में लाहौल को छोड़कर तीन परगने-किलाड़, साच और धरवास थे इन परगनों का शासन 'चाड़ नामक कारदार के अधीन हुआ करता था जिसे चाड़ी कहते थे। प्रजा का प्रशासन इकाई से कोई सम्बन्ध न था। उस समय धरवास से किलाड़ तक नौ प्रजाएं थीं। उनके नाम इस प्रकार थे :- किलाड़, क्वास, कुप्फा, सुराल, धरवास, लुज, करयास, सेर-भटवास और हुंडान। साच परगना में अन्य प्रजाएं थीं। इस समय पांगी घाटी में 15 पंचायतें कार्यरत हैं। वे प्रजा के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करतीं। प्रजाओं का घटना-बढ़ना भी स्वाभाविक है। धरवास क्षेत्र में लेखक ने इस सम्बन्ध में साक्षात्कार किया। स्थानीय लोगों ने लेखक को बताया कि धरवास और कुठाह गांव की एक प्रजा थी। अब कुठाह गांव जिस में केवल बीस परिवार शामिल है, ने अपनी अलग प्रजा बना ली है। धरवास प्रजा में अब साठ परिवार रह गए हैं। बैठक में कम से कम घर के मुख्य का होना आवश्यक समझा जाता है 'प्रजा प्रणाली में उन्होंने आधुनिक विकास Developmeant के विषय में ध्यान दिया जाता है कि धरवास वाले अब 'टजोट' के माध्यम से सर्वसम्मति से तीन सदस्य चुन लेते हैं जो एक वर्ष के लिये 'प्रजा' के प्रतिनिधि माने जाते हैं। वे प्रजा के हर काम के लिये प्रतिनिधित्व करते हैं। धरवास प्रजा ने 20 परिवार के लिये एक के अनुपात से प्रतिनिधत्व दिया है जबकि अन्य, 'प्रजाएं' अपना अनुपात, अपने तौर पर रख सकते हैं। एक अन्य क्षेत्र 'साच' में लेखक ने इस सम्बन्ध में वहां के उच्च विद्यालय के मुख्य अध्यापक श्री दौलत राम से पूछ-ताछ की। वह स्थानीय निवासी होने के कारण लेखक जिज्ञासा के प्रश्नों के उत्तर भली प्रकार दे सकते थे उन्होंने लेखक को जानकारी दी कि 'प्रजा में चुनाव का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। सभी कार्य सर्वसम्मति से होते हैं, इस में प्रतिनिधि चुनने की कोई आवश्यकता नहीं होती। यदि कहीं-कहीं यह प्रथा आ

भी गई हो तो यह 'प्रजा प्रणाली' में नई बात है। उन के अनुसार सभी निर्णय 'माउट' (Meeting) में होने अनिवार्य होते हैं।

जब कोई बात समस्त पांगी घाटी से सम्बन्धित हो तो सभी प्रजाएं सर्वसम्मत हो जाती हैं। इसे पांगी प्रजा का फैसला कहा जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि भिन्न-भिन्न गांव की प्रजाएं 'पांगी प्रजा के अंग हैं। हैं। दूसरे शब्दों में सभी गांव छोटे परिवार हैं जबकि सम्पूर्ण 'पांगी-घाटी' एक बड़ा परिवार है। वे एक ही शरीर के विभिन्न अंग हैं। किसी बड़ी समस्या पर उन का एक ही निर्णय अपेक्षित होता है। सैद्धांतिक तौर पर 'एक प्रजा' में रहने वाले व्यक्ति एक ही परिवार के सदस्य गिने जाते हैं अतः सभी युवक और युवतियां भाई-बहन माने जाते हैं अतः एक ही गांव के युवक-युवति का आपस में विवाह वर्जित माना है संदर्भ :— Sample survey report census 1961) बड़ी प्रजा का निर्णय प्रजा का भी किसी तरह सामूहिक 'टजोट' में सर्वसम्मति से लिया जाता है।

कार्य क्षेत्र :-

1. **देवी-देवताओ के मन्दिरों का प्रबन्ध :-**

पांगी क्षेत्र में असंख्य देवी-देवतओं के मन्दिर हैं जिनकी लोगों द्वारा बड़ी मान्यता है। हर मन्दिर में एक राखा एक पुजारी और एक चेला (गूर) हुआ करता है जिस की नियुक्ति औपचारिक रूप 'प्रजा' करती है। राखा देवता के भण्डार की देख-रेख करता है जिसे आंशिक रूप से देवता की चढ़तर (भेंट) का भाग दिया जाता है। निश्चित राशि 'प्रजा' से वसूल कर मन्दिर की भलाई में प्रयोग में लाती है। शेष राशि, अन्न या खाद्य पदार्थ पुजारी को दिये जाते हैं। उदाहरण के लिये पांगी-घाटी में शीतला माता का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। इसकी मान्यता लगभग किलाड़ के पश्चिम में सर्वाधिक है। लेखक ने लुज पंचायत के प्रधान श्री सूरदास से उसकी जानकारी प्राप्त की।

उनके अनुसार इस मन्दिर का प्रबन्ध प्रजा के हाथ में है। पुजारी से वार्षिक 500/-रु० मन्दिर की भलाई के खाते में 'प्रजा' के माध्यम से जमा किये जाते हैं शेष पुजारी को दिये जाते हैं। पांगी का सर्व प्रसिद्ध मन्दिर मिंधला सरकारी नियंत्रण में मन्दिर समिति के अधीन है। इस का प्रबन्ध 'प्रजा' के अधिकार से बाहर है। अन्य छोटे-बड़े मन्दिर 'प्रजा' के कार्य क्षेत्र में है।

2. जंगलों की रक्षा :-

यद्यपि जंगल का प्रबन्ध जंगलात विभाग के हाथ में है फिर भी 'प्रजा' इसको सुरक्षा का ध्यान रखती है। जंगल की आवश्यकता से अधिक कटाई को रोका जाता है। ये ध्यान रखा जाता है कि प्रजा का कोई परिवार विनाश न करें।

3. दैनिक आवश्यकता की प्राकृति सम्पत्ति पर एकाधिकार को रोकना :-

जंगल में उगने वाली प्रकृतिक सम्पत्ति के विनाश और एकाधिकार को रोका जाता है। आस-पास जंगल में घास की फसल को सामूहिक तौर पर काटा जाता है ताकि इस का भाग हर परिवार को मिल सके। 'प्रजा' घास की कटाई के लिये एक दिन निश्चित करती है ताकि सभी परिवार उस दिन अपनी आवश्यकतानुसार घास का लाभ प्राप्त कर सके। इसी प्रकार अन्य प्राकृतिक सम्पत्ति के दुरपयोग तो रोका जा सकता है।

4. आपसी सामाजिक व्यवस्था :-

गृह निर्माण, विवाह, संस्कार, मृत्यु और दुःख के समय 'प्रजा' का हर सदस्य प्रभावित परिवार का साथ देता है। हर एक का दुःख-सुख अपना दुःख-सुख समझा जाता है। विवाह के समय विवाह रचाने वाला परिवार 'प्रजा' के लिये आवश्यक तौर पर सहभोज का प्रबन्ध करता है। मृत्यु के समय सारा गांव एक परिवार की तरह सम्वेदन-

शील बन जाता है 'कठी' (क्रिया) के दिन सभी मिल कर प्रभावित परिवार के घर सहभोज में भाग लेते हैं, यदि कोई परिवार या सदस्य दुःख-सुख का भागी न बने तो उसे जुर्माना तक देना पड़ता है।

5. **रीति रिवाज़ों के उल्लंघन पर प्रतिबन्ध :-**

ये विशेष ध्यान रखा जाता है कि गांव के रीति रिवाज़ बनें रहे अतः उनका उल्लंघन करना प्रजा के आदेशों की अवहेलना करना है और यह विशेष ध्यान रखा जाता है कि रीति-रिवाजों का किसी भी रूप में उल्लंघन न हो। किसी परिवर्तन के लिये 'टजोट'। 'माउट' के निर्णय की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार 'प्रजा-प्रणाली' ने पांगी-घाटी को एक परिवार के रूप में बांध रखा है। हर गांव माला के मनके की तरह एक दूसरे से एक मज़बूत माला के रूप में सम्बद्ध हैं जिसका अध्ययन प्रेरणास्वरूप शोध का विषय बना हुआ है।

●

व्यक्तित्व

उर्दू के मशहूर शायर विशन दास गुलशन

डॉ० रत्न चन्द शर्मा

आजीवन संघर्षों से जूझते हुए भी निर्भीक हृदय विशन दास 'गुलशन' के व्यक्तित्व में कवि नाटक कार एवं पत्रकार आदि अनेक विधाओं का कृतित्व समाविष्ट है। उनके जज्बात में क्रान्ति है, देश प्रेम और ईश्वर भक्ति के साथ भारतीयता है। निडर होकर उन्होंने अपने विचारों को कवित्व से सजाया है। यद्यपि उनका समस्त जीवन आर्थिक अभाव से ग्रस्त रहा, तथापि वे जीवन क्षेत्र में सोत्साह डटे रहे, न किसी के आगे दीनता दिखाई न ही पलायन ही किया। जो बात पसन्द न आई, कलम उठा कर उस का खुल कर विरोध किया। इसी लिए उनकी लेखनी अंगारे उगलती थी। भले ही प्रतिफल में उनको जेल मिली, परन्तु वे न विदेशियों के आगे झुके और न ही क्रान्ति-लेखन से रूके। उनके व्यक्तित्व में कवित्व के साथ विद्वत्व का सुन्दर सामञ्जस्य था। उर्दू, अरबी तथा फारसी में वे साधिकार लिखते थे। 'गुलशन' ने गद्य-पद्य दोनों पर ही लेखनी का प्रयोग किया, किन्तु उनके गद्यात्मक वाक्य भी सहज कवित्व की छाप से अछूते नहीं रहे हैं।

विशन दास 'गुलशन' ने अपने जन्म से जिला हमीरपुर की नादौन उपनगरी को अलंकृत किया। उनका जन्म 15 अक्तूबर, 1903 को पं० बृजलाल के घर हुआ। यह एक मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार था। उनके पिता भी एक कला प्रेमी तथा कलाकार थे। नादौन में ही जिनकी शर्बत की दुकान थी।

'गुलशन' शैशव में ही पक्षाघात के शिकार हो गए। फलस्वरुप वे एक टांग के सहारे लाठी का ग्राश्रय लेकर चलते थे। सारा जीवन उन्हें यही स्थिति सहनी पड़ी।

प्रारम्भिक शिक्षा नदौन पाठशाला में प्राप्त कर इन्होंने होशियारपुर से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदनन्तर वे लाहौर चले गए। वहां इन्होंने सन् 1926 ई. में उर्दू में मुन्शी आलम तथा 1928 में मुन्शी फाज़ल पास की। लेखन तथा सम्पादन के साथ अध्ययन जारी रखते हुए 1937 में पंजाब विश्वविद्यालय से बी. ए. पास की।

गुलशन में कवित्व प्रतिभा जन्म जात थी। प्रारम्भिक अध्ययन काल में ही वे कविता किया करते थे। उस समय भी साहित्यिक समाज इनकी शायरी से सुपरिचित था। शायरी के क्षेत्र में जब इनको सुयोग्य गुरू लब्भू राम जोश का शिष्यत्व मिला तब इनकी कविता में और भी निखार ग्राने लगा। उनके शिष्यतत्व में इनकी कविता ने परिपक्वता, भाषा ने प्रांजलता और व्यञ्जना शक्ति प्राप्त की। सुयोग्य गुरू के निर्देशन में इनकी नज़मों में ओज, ग़ज़लों में भाव-गाम्भीर्य तथा भाषा में परिमार्जन एवं व्यंग्य बन पड़ा है।

पण्डित विशन दास तत्कालीन मशहूर शायरों में परिगणित किए जाते रहे हैं। दिल्ली जालन्धर तथा कांगड़ा में सम्पन्न होने वाले मुशायरों में उस समय उनकी धाक हुआ करती थी। श्रोतागण इनकी कविता सुनने के लिए कविगोष्ठियों में ग्रन्त तक ग्रातुर रहते। इसके साथ वे स्वयं भी साहित्यक माहौल बनाए रखने के लिए अपने घर में ही कवि-बैंठकों का आयोजन किया करते थे।

एक तो शारीरिक असमर्थता के कारण 'गुलशन' श्रमसाध्य कार्य करने में ग्रसमर्थ थे तो दूसरे कोई भी संस्था ऐसे क्रान्तिकारी को नौकरी देकर जोखिम उठाना नहीं चाहती थी। परिणामतः उन्हें बेकारी का मुंह देखना पड़ा, जिसे उन्होंने स्वयं

ब्यान किया है :- "पाला पड़ा है मुझको गमे रोजगार से'

सन् 1937 में अप्रैल की चार तारीख के दिन 'गुलशन' सूद एंग्लो संस्कृत हाई स्कूल गरली में अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए परन्तु वेतन बहुत ही कम तय किया गया, क्योंकि गैर सरकारी संस्थाएं उनकी नियुक्ति से बहुत घबराती थी। उन्हें ऐसे व्यक्ति को वृत्ति देकर सरकारी सहायता के बन्द हो जाने का भय रहता।

भारत स्वतन्त्र हुआ। गुलशन के सपने साकार हो गए। स्वतन्त्रता के उपरान्त जिला बोर्ड के स्थानीय विद्यालय नादौन में ही उनकी अध्यापक के रूप में नियुक्ति हो गई। उनकी इस नियुक्ति के पीछे तत्कालीन मुख्याध्यापक श्री जगन्नाथ कमाल का विशेष हाथ रहा। कमाल साहिब स्वयं भी एक कवि हृदय रसिक थे। नादौन शहर की जल-वायु पर उनकी पंक्तियों आज भी प्रसिद्ध हैं :-

"दूध की तासीर रखती है, हवा नादौन की।" सन् 1957 तक गुलशन इसी विद्यालय में पढ़ाते रहे।

लाहौर से उस समय 'कांगड़ा वैली' तथा 'कांगड़ा समाचार' मासिक पत्र प्रकाशित हुआ करते थे। इन पत्रों में गुलशन की अनेक कविताएं प्रकाशित हुआ करती थीं। सन् 1932 में इन पत्रों का इन्होंने सम्पादन भी किया। कांगड़ा के ही प्रख्यात विद्वान लेखक रघुनन्दन शास्त्री भी इन पत्रों के सम्पादन से जुड़े थे। इन पत्रों का सांस्कृतिक, एवं सामाजिक स्तर अपना विशेष महत्त्व रखता था। 'कांगड़ा समाचार' के अगस्त 1935 के अंक में प्रकाशित 'नाशाद' राम प्रसाद खोसला द्वारा लिखित 'वादिए कांगड़ा' कविता की कुछ पंक्तियां अवधेय हैं :-

ऐ वादी कांगड़े की जीनते हिन्दोस्तां है तू,
फूला फला चमन है लहलहाता गुलस्तिां है तू।
निशां फिरदौस का है और जन्नत का गुमां है तू,
मजाजी तेरी सूरत है हकीकत का निशां है तू।

तिरे हर चप्पे-चप्पे में भरी शाने खुदाई है।
तिरे हर फूल पत्ते में अदाए किबरियाई है॥

उस समय इन लघु समाचार पत्रों की स्थिति बहुत दयनीय तथा दोलायमान हुआ करती थी। चहुं ओर विदेशी वर्चस्व था। एक ओर तो ये पत्र सरकार के पक्षपाती नहीं बनना चाहते थे तो दूसरी ओर यदि विरोध करते तो सरकार की ओर से आर्थिक सहयोग से वंचित होकर पत्र बन्द करने पड़ जाते। गुलशन उस समय की अपनी मन: स्थिति को इस प्रकार वर्णित करते हैं :-

"मजबूर वशर जब होता है उस वक्त की हालत क्या कहिए।
जिस काम से उसको नफरत है वह काम भी करना पड़ता है ।।"

इसके अतिरिक्त इनकी रचनाएं उर्दू मरकज, फिल्म झंकार, अदबी दुनिया, गाहकार, नया संस्कार तथा ताज आदि पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुआ करती थीं।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने में नादौन का अपना एक विशिष्ट योगदान रहा है। पं. इन्द्रपाल, यशपाल तथा नगाइया मल्ल आदि क्रान्तिकारी देश भक्त इसी धरती की देन हैं। इन सेनानियों ने न केवल आज़ादी की ज्वाला को जलाए ही रखा अपितु उसमें कूदने में भी किसी से पीछे न रहे। इस भावना से 'गुलशन' अछूते कैसे रह सकते थे। उनकी शायरी इस बात का सबूत है। उनकी सशक्त लेखनी क्रान्ति की आग उगलती थी। कलम बन्द न हुई, वे स्वयं कारागार में बन्द हो गए।

9 सितम्बर 1930 की घटना है। उस दिन जिला हमीरपुर के 'ताल महल' नामक स्थान पर ब्रिटिश शासन के विरोध में एक जन सभा का आयोजन किया गया था। जिसे स्वतन्त्रता सेनानी मास्टर कुन्दन लाल ने भी सम्बोन्धित करना था। सरकार के विरूद्ध भाषण करने के आरोप में "जज़्बाए इश्के वतन" के तहत मास्टर जी को गिरफ्तार कर लिया गया। जब उनको लेकर नादौन पहुंचे तो वहां उनकी विदाई में 'तोफाए गुलशन' कविता उन्होंने एकत्रित जन समूह को पढ़ कर सुनाई :

सुन लो आजादी के मतवालो,
अगर होना है शाद,
दिल में अपने खींच लो,
तसवीर कुन्दन लाल की।"

कविता पढ़ने का यह परिणाम हुआ कि 16 सितम्बर 1930 को गुलशन भी गिरफ्तार कर लिए गए। उस दिन 'कौमी खादिम' नज़म में उन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए थे :-

"इससे बढ़ कर कौम के खादम की क्या तौकीर हो,
हाथ में हो हथकड़ी तो पाओं में जंजीर हो।
मैं बताऊं, सुन लो अन्दाज़ा हसूले हुर्रियत,
इक तरफ गर्दन हो, इस तरफ शमशीर हो।
खोल दो अब सीना बन्दूके जफा के सामने,
फैसला होगा तशदद का खुदा के सामने।"

नादौन में गिरफ्तार करके उन्हें धर्मशाला ले जाया गया। उन पर मुकद्दमा चला, छह महीने की कड़ी सज़ा तथा फिर दस नम्बरी मिली। यह घटना उन्होंने स्वयं ब्यान की है :-

"इश्के वतन के जुर्म में गुलशन हमें मगर,
छः माह कैदे सख्त फिर दस नम्बरी मिली।"

उन्हें धर्मशाला से गुरदासपुर जेल मिली। जेल जीवन के विषय में उनका विचार था कि गुलाम बन कर जीना भी तो जेल ही है। इसलिए इस जेल और उस जेल में तनिक भी फर्क नहीं है। यह सरकार मुझे तो जेल में बन्द कर सकती है, परन्तु मेरे विचारों को नहीं बदल सकती है। पण्डित हरिनाथ के अनुरोध पर सन् 1931 में 'अज़अगाज़े' कविता में जेल के विषय में लिखा है :-

हयाते जाविदां है मुल्कों मिल्लत पर फना होना,
इसी इश्के वतन में कुशताए तेगे ज़फा होना।
इसे मय्यक कहते हैं खुशी से कौम के खादिम,

सआदत सी सआदत है गिरफतारे बला होना।
यह दिल इक आशिक़ाने कौम के हिस्से में आया है,
किसे आता है वर्ना बाल बच्चों से जुदा होना।
कोई जज़्बात को मेरे दबा सकता नहीं मुतलक,
मुझे है एक जैसा कैद होना या रिहा होना।

विशनदास 'गुलशन' के संघर्षमय जीवन में आर्थिक विषमता ने उनका पीछा न छोड़ा। फिर भी अदम्य साहस के साथ वे सारस्वत साधना में लगे रहे। उनकी प्रकाशित रचनाओं में 'इन्साफ' नाटक है। यशपाल साहित्य परिषद् नादौन ने जिसे हिन्दी रूपान्तर में प्रकाशित किया है। मूल उर्दू भाषा में लिखित यह एक सामाजिक, समस्या मूलक ड्रामा है। कृष्ण भक्ति का पुट इसकी अपनी विशेषता है। नाटकगत प्रत्येक गीत गेय भी हैं, जो संगीत की लय में तबले पर संगत की अपेक्षा रखता है। पात्र भी प्राय: शायरी अन्दाज में हाव-भाव व्यक्त करते हैं। यह जहां विपन्न किसान राम गोपाल की परिस्थिति जन्य विवशता को प्रस्तुत करता है वहां धन्नामल सरीखे सहूकारों की घिनौनी मानसिकता का पर्दाफाश करने में भी सक्षम है।

इस नाटक में श्यामा के प्रति कामुक हृदय कोतवाल के कुप्रयासों का प्रदर्शन करवा कर 'गुलशन' ने रक्षक पर भक्षक होने का तीक्ष्ण प्रहार किया है। कृष्ण का श्यामा के प्रति एक-निष्ठ सत्य प्रेम अंकित है जो परिस्थितियों के झंझावात से रूहानियत के चरमोत्कर्ष पर पहुंच कर अन्त में परिणय की परिणति पाने में सफल दिखाया गया है। महाराज की न्याय प्रियता इस नाटक को अन्वर्थ करती है। लेखक ने अन्याय प्रिय तथा कर्तव्य विमुख शासक पर तीखा प्रहार किया है :-

"प्रजा रहे तकलीफ में राजा गाए मल्हार।
लानत उसके राज पर जीने पर धिक्कार।।"

'गुलशन' नादौनवी ने फारसी, उर्दू तथा हिन्दी के शब्दों का यथा स्थान समुचित प्रयोग करके अपने भाषा ज्ञान का अच्छा

परिचय दिया है।

बहारे गुलशन

कविता संग्रह है। यशपाल साहित्य परिषद् नादौन ने हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला को प्रकाशनार्थ प्रस्तुत किया है। संग्रह का प्रकाशन अकादमी द्वारा किया जाना है। इसके अतिरिक्त उनकी ग़ज़लें 'विश्व-ज्योति' मासिक में साधु आश्रम, होशियार पुर से हिन्दी रूपान्तर में प्रकाशित हुई हैं।

गुलशन बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका कृतित्व क़ोरी कल्पना की उड़ान मात्र नहीं है, उसमें उनका निजी अनुभव ही कविता के माध्यम से प्रस्फुटित हुआ है। विश्वस्त मित्रों से चोट खाया हुआ उनका मन कह उठता है :-

कांटों की खलश का क्या कहिए,
कांटे तो आखिर कांटे हैं।
गुलजारे जहां में ऐ 'गुलशन'
फूलों से भी डरना पड़ता है।"

कभी वे अपनी खिदमत की धूम मचाने वालों पर सीधे ही करारी चोट करते हैं :-

"अपनी ख़िदमत की धूम मचाने वालों,
अपने आलम की दूकान सजाने वालो,
हक जताते हो, मगर फर्ज से कतराते हो,
मरते हो नाम पर क़ाम से कतराते हो।"

उनकी देश भक्ति की बानगी देखिए :-

"वतन पर जान देने को हम तैयार बैठे हैं,
गुलाम आबाद में जीने से अब बेजार बैठे हैं।
उठा सकती नहीं कूचे से तेरे मौत भी हमको,
तेरे वादों से होकर आखरश लाचार बैठे हैं।"

वे देश के नौजवानों को स्वतन्त्रता हेतु जागरण का पैगाम देना चाहते हैं :-

नौजवानों वतन ताबों तवां पैदा करो
इस गुलामस्तान में नामोनिशां पैदा करो।
अपनी आतिशख़ेज़ आहों से घुआं पैदा करो,
जिसका हर इक गुल हो लबरेज, शमीमे-हर्रियत,
खून से अपने अब ऐसा गुलस्तां पैदा करो।
लाला ह्याए हुर्रियत के जल उठे,
हर सू चराग गुलशन भारत में चश्मे खूं किशां पैदा करो।

'देवियों से ख़ताब' कविता में वे भारत की मातृशक्ति को अपनी सन्ताने देश-भक्त बनाने की प्रेरणा देते है :-

"देशभक्ति की करो बच्चों को अपने तरबीयत,
कौमियत की आन पर मरना उन्हें सिखलाओ तुम,
दम से इनके हो बहारे गुलशन हुब्बे वतन,
बागबानी का कमाल अपनी जरा दिखलाओ तुम।।"

भारत की गुलामी से बे दिन रात पीड़ित रहते थे। इसलिए इश्के वतन के जज्बात को दिल खोल कर अभिव्यक्त करके वे दिल को राहत दिया करते :-

अगर निकले हसूले वस्ले आजादी में दम निकले,
इलाही आरज़ुए दिल तहे तेग़े सितम निकले,
निहां राजे फ़िरोग़े शमा है गर्दन कटाने में,
नया मेरे लिए हर रोज अंदाजे सितम निकले।

स्वतन्त्रता से पूर्व क्रन्ति के दौर को देखकर उन्होंने आशा-वादिता को इस प्रकार प्रकट किया था :-

"जरूर आज़ाद होकर, सुर्खरू हिन्दोस्तां होगा,
शहीदाने वतन का खून है कब रांयगां होगा।
हरारत इस कदर है खूने जां बाजाने भारत में
असर से इसके हखीरे मुअत्तल भी जवां होगा।"

क्रान्तिकारी और लेखक गुलशन का साहित्य आज़ादी से पहले और आज़ादी के बाद दो रूपों में हमारे सामने आता है। उनकी रचनाओं में आर्थिक अभावों की अनुभूति है तो कहीं युवावर्ग को फर्ज निभाने की प्रेरणा है। तथाकथित देश भक्तों को प्रताड़ना तथा वास्तविक देश भक्ति की तसवीर भी उन्होंने चित्रित की है। आज़ादी से पूर्व—लिखित साहित्य में पिंजरे में बन्द परिन्दे की पीड़ा है आज़ादी के लिए लहू गर्माने वाला जोश भरा है। स्वतन्त्रता के उपरान्त की नज़्में देश की खुशहाली तथा फर्ज निभाने का दिशा निर्देश करती हैं।

यह विद्वान शायर तथा क्रान्तिकारी आजीवन संघर्ष भरी जिंदगी जीता हुआ सन् 1957 में असमय ही इस फानी दुनियां से विदा लेकर लेखनी की करामात से अमर हो गया। यदि उसका समूचा साहित्य प्रकाशित हो जाता है तो हिमाचल के इस गुमनाम शायर से सारस्वत-समाज लाभान्वित हो सकेगा।

●

कहलूरी व उसकी स्वर भाषा ध्वनियां

सतीश कश्यप

अपभ्रंश प्राकृत कालीन बोलचाल की भाषा से विकसित हुई। इसे प्राकृत व आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी कहा जा सकता है। इसका काल मोटे रूप से 500 ई० से 1000 ई० तक है यद्यपि अपभ्रंश शब्द के प्राचीनतम प्रयोग 150 ई० पूर्व के लगभग भी देखने को मिलते हैं। संसार की भाषाएं व उनका वर्गीकरण करते हुए डॉ० भोला नाथ तिवारी ने भाषा विज्ञान में अपभ्रंश के सात भेद किए हैं जिनमें से 13 भारतीय भाषाऐं निकली हुई मानी। इन्हीं सात भेदों में एक का नाम खश अपभ्रंश भी उन्होंने माना है। इसमें से वे पहाड़ी भाषा की उत्पत्ति मानतें हुए इस पर भी शौर सेनी अपभ्रंश तथा उसके नागर रूप (पुरानी राजस्थानी) का प्रभाव स्वीकार करते हैं। इसी कारण पहाड़ी भाषाओं की पश्चिमी हिन्दी तथा शौर सेनी अपभ्रंश से समानता देखकर कुछ भाषा शास्त्री इनका सम्बन्ध भी शौर सेनी अप्रभ्रंश से मानने के पक्ष में होते जा रहे हैं।

खश या कुछ नए मतों के अनुसार शौर सेनो अपभ्रंश की पहाड़ी जिसको डॉ० ग्रियसर्न ने पश्चिमी पहाड़ी का नाम दिया है और इसका विस्तार क्षेत्र भद्रवाह से लेकर नेपाल तक निश्चित किया है, की लिपि नागरी है। हिमाचल एक पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण यहां की भाषा को हिमाचलो या पहाड़ी कहना अधिक संगत होगा। हिमाचल में लगभग 20 से अधिक प्रमुख बोलियां हैं। इन सभी बोलियों पर राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट है। यहां कहलूरी बोली की ध्वनियों पर विचार किया जायगा। यह जिला बिलासपुर की बोली है।

स्वतन्त्रता पूर्व इसे कहलूर रियासत कहा जाता था। इसी कारण इस क्षेत्र की भाषा का नाम कहलूरी पड़ा। जार्ज ग्रियसर्न ने अपनी पुस्तक "द लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया" वाल्यूम नौ के भाग एक में कहलूर व मांगल रियासतों की भाषा को कहलूरी या बिलासपुरी ही नाम दिया है। वे आगे कहते हैं कि यह भाषा पंजाब के होशियारपुर जिला में बोली जाने वाली पंजाबी के ही पास है। अपनी बात के समर्थन में उन्होंने कहलूरी व पंजाबी के कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत किया है।

श्रुति माधुर्य इसका विशेष गुण है। इसे बिलासपुरी बोली भी कहते हैं आज इसके बोलने वालों की संख्या 2.5 लाख से भी अधिक है। पहाड़ी भाषा पर दूसरा महत्त्वपूर्ण काम टी० ग्राह्य बैली द्वारा "स्टड़ी आफ दा नोर्दन हिमालयन डाएलेक्ट" के नाम से जाना जाता है। बिलासपुरी बोली के बारे में इनकी "द रायल एशियाटिक सोसाइटी के मोनोग्राफ" वाल्यूम 17 में निम्नलिखित पंक्तियां हैं:—

बिलासपुर या कहलूर रियासत में 6 बोलियां बोली जाती हैं। रियासत के मध्य भाग तथा इसके चारों ओर छः से सात मील के घेरे तक बिलासपुरी या कहलूरी शुद्ध मानक रूप में है। इसके एकदम पश्चिम के भाग की ओर जहां से इसकी सीमा उत्तर में कांगड़ा से लगती है उस क्षेत्र में बोली जाने वाली कहलूरी को पश्चिमी बिलासपुरी कहा जा सकता है। इस मानक भाषा के उत्तर में दो उप बोलियां बोली जाती हैं। एक पश्चिम की ओर कांगड़ा सीमा के पास जिसे उत्तरी बिलासपुरी कह सकते हैं जब कि पूर्व में मंडी रियासत की सीमा से लगते क्षेत्रों में मंडयाली का ही रूप बोला जाता है मानक भाषा के एकदम दक्षिणी क्षेत्रों में लोग थोड़ी भिन्न बोली बोलते हैं जिसे यहां दक्षिणी बिलासपुरी नाम दिया है। इसका क्षेत्र नालागढ़ सीमा की कम चौड़ी पट्टी में है। इसके पूर्व में तथा बिलासपुर रियासत के दक्षिण पूर्व क्षेत्र में बिलासपुरी बोली का दांवीं रूप बोला जाता है। यह बोली पूरे दांवीं क्षेत्र में

बोली जाकर बाघल रियासत की सीमा के साथ लगे क्षेत्रों तक में बोली जाती है।

उपरोक्त बिलासपुरी उप-बोलियां आपस में इतनी निकट हैं कि इन्हें बड़ी सहजता से बिलासपुरी या कहलूरी बोली के अन्दर ही समाया जा सकता है। यद्यपि वे क्षेत्र विशेष के कारण छः भागों में अलग दिखती हैं। संक्षेप में इन भाषाओं का वर्गीकरण निम्नप्रकार से किया जाता है। कुम्हार हट्टी के उत्तरी व पूर्वी क्षेत्रों में बोली जाने वाली कहलूरी पर मंडयाली की छाप स्पष्ट है तथा कभी-कभी यह बोली पूरी तरह से मंडयाली से ही मेल खाती प्रतीत होती है। वर्तमान बिलासपुर शहर व इसके आस-पास तथा इसके दक्षिणी भागों पर पंजाबी का प्रभाव है।

स बिलासपुर के पूर्व व दक्षिण पूर्व में दांवीं घाटी क्षेत्र पड़ता है। उस पर कयोंथली बोली का किंचित प्रभाव है परन्तु क्योंथली बोली की सी समानता उसमें नहीं है।

कहलूर की लोकप्रियता इस बात से भी आंकी जाती है कि राजा अमर चन्द (1883-88) के जमाने से यह बोली टांकरी लिपि में राजदरबार की भाषा लगभग चौहदा सालों तक बनी कर रही। ऐसा इस बोली की पूर्णता के ही कारण सम्भव हो सका।

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सामान्य ध्वनि व भाषा ध्वनि में अन्तर माना गया है। सामान्य ध्वनि जहां चेतन अचेतन के किसी भी रूप से उत्पन्न ध्वनि है वहां भाषा ध्वनि भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की एक वह लघुतम इकाई है जिसका उच्चारण व श्रोतव्यता की दृष्टि से अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व हो। ध्वनियों का सबसे अधिक प्रचलित वर्गीकरण स्वर और व्यंजन के रूप में मिलता है। स्वर वह घोष या कभी-कभी अघोष भी, ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख विवर से निकल जाती है तथा व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा को पूर्ण अवरूद्ध होकर फिर आगे बढ़ना पड़ता है

अथवा संकीर्ण मार्ग से घर्षण करते हुए या मध्य रेखा से हट कर एक या दोनों पार्श्वों से अथवा किसी भाग को कंपित करते हुए निकलना पड़ता है। इस प्रकार व्यंजन में वायुमार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उपस्थित होता है।

कहलूरी स्वर भाषा ध्वनियां निम्न प्रकार से है:— अनुनानिक स्वर की (ई) ध्वनि को बताते स्वर ध्वनि तन्त्र में कंपन होने के कारण ध्वनि उत्पन्न होती है। कोमल तालू नासिक विवर के रास्ते को बन्द करने की स्थिति तक ऊपर उठ जाता है। होंठ फैल जाते है। इस स्वर ध्वनि को पैदा करते हुए अग्र जिह्वा मुंह के दंत तक ऊपर अधिकतम ऊंचाई तक उठ जाती है। 'ई' को उच्च अग्र अवृत मुखो स्वर माना गया है। यह कहलूरी में अपेक्षतया लम्बे दबाव से उच्चारित होता है। यह अग्र मध्य व पश्च तीनों स्थितियों में प्रयोग में लाया जाता है। जैसे :-

अग्र:	इद्धल	: चोल
	ईद	: ईद
मध्य:	कमीज	: कमीज
	सीद	: शहीद
	सीऊंक	: दीमक
	कीमत	: कीमत
	सीत	: ठण्ड
	नीत	: नीयत
पश्च:	दयाली	: दिवाली
	ऑथी	: हाथी
	काली	: काली (रंग के संदंभ में)
	ऑली	: हल चलाने वाला
	काथी	: झाड़ीदार पौधा
	पाली	: पीठ पर बंधा थैला

'इ' स्वर की ध्वनि उत्पन्न करते हुए भी स्वर ध्वनि तन्त्र में कंपन होकर कोमल तालू नासिका विवर तक पहुंच कर उसे

बन्द करता है, ओष्ठ फैलते हैं अग्र जिह्वा कठोर तालू तक उठती है परन्तु यहां (ई) जैसी स्थिति नहीं बनती तथा उच्चारण समय भी (ई) से कम होता है। इस स्वर को निम्नतर उच्च, अग्र अवृत मुखी स्वर कहते हैं। यह भी (ई) की ही भान्ति आदि, मध्य व अन्त तीनों स्थितियों में लाया जाता है। जैसे :-

अग्र:	इकाशी	: इकासी
	इट	: ईट
	इनारा	: इनका
	इक्खा	: यहां
	इद्दा	: ऐसे ही
मध्य:	किन्नूए	: किस ओर
	कित्ती	: कहां
	दित्तूरी	: दिया है
पश्च:	छियाशी	: छयासी

'ए' स्वर की पैदा करते हुए ओष्ठ उदासीन स्थिति में होते हैं। जिह्वाग्र कठोर तालू तक उठता है परन्तु यहां जीभ (इ) की अपेक्षा तुलना में कम ऊंचाई तक उठती है। कोमल तालू उठकर नासिका विवर को बन्द कर देता है। "ए" को उच्चतर मध्य अग्र अवृत मुखी स्वर कहते हैं तथा वह अग्र मध्य पश्च तीनों स्थितियों में होता है। जैसे :-

अग्र:	एसिया	: एशिया
	एसरा	: इसका
	एलों	: जंगली मेथी
	एक	: एक
	तेल	: तेल
	मेज	: मेज
	सेक	: सक
	सेला	: ठण्ड
	सेल	: वृक्ष की छाल
	सैज	: देशी खाद

पश्च:	नेडे	: नजदीक
	ऐडे	: ऐसे
	तेड़े	: उस तरह से
	कह्‌रे	: घेरे

'ऐ' का उच्चारण करते हुए होंठ अधखुले होकर फैले रहते हैं। ध्वनि तन्त्र से कम्पन होता है। कोमल तालू नासिका विवर में जाने वाली हवा को रोकता है। जिह्वाग्र व जीभ के किनारे निचले दांतो के सम्पर्क में रहते हैं। इस स्थिति में जिह्वाग्र "ए" की अपेक्षा कम ऊंचाई तक ऊपर की ओर उठता है। इसको निम्नतर मध्य अग्र अवृत मुखी स्वर कहते हैं तथा वह भी अग्र मध्य व पश्च तीनों स्थितियों में होता है :-

अग्र:	ऐस	: ऐश
	ऐब	: दोष
	ऐन	: काफी सारा
मध्य:	सैर	: एक त्योहार
	मैला	: गन्दा
	पैर	: पांव
	कैत	: व्रत (मृत्यु पाठ)
पश्च:	लै	: लेना
	जै	: विजय
	एहे	: है
	सेहै	: वह

'अं' इस स्वर को पैदा करते हुए स्वर तन्त्री में कम्पन होकर कोमल तालु नासिका विवर को संवृत कर देता है। जीभ का मध्य भाग थोड़ा ऊपर उठता है। होठ किंचित फैल जाते हैं। इसे मध्य केन्द्रीय अवृतमुखी लघु स्वर कहते हैं। यह अग्र मध्य स्थितियों में ही प्रयुक्त होता है :-

अग्र	अतल	: वास्तविक
	अफल	: बिना फल का पौधा
	अड़ी	: हल का हत्था

	ग्रलख	: पागलपन
अग्र	अति	: ज्यादा
	अलस	: अमातारस का पेड़
मध्य:	दश	: दस
	पल	: क्षण
	पग्र्र	: फसल तोड़ने का समय एक ही वृक्ष से एक ही ऋतु में समय-समय पर फल की तोड़ाई।

'आ' में भी स्वर तन्त्री कोमल तालु व नासिक विवर 'अ' जैसी स्थिति में रहते हैं परन्तु जीभ बिल्कुल भी नहीं उठती। होठ थोड़ा फैल जाते हैं। इसका उच्चारण समय 'अ' की अपेक्षा थोड़ा ज्यादा देर का है। इसे निम्न मध्य अवृत मुखी स्वर कहते हैं। यह भी अग्र मध्य व पश्च तीनों स्थितियों में प्रयुक्त होता है :-

अग्र:	आख	: आंख
	आन	: अनाज
	आलू	: आलू
	आइरा	: आया है।
	आस	: आशा
	आखि	: आखें
	ऑसी	: हंसी
मध्य:	माल्ले	: मेरे पास
	शाक	: रिश्ता
	मुग्राल	: पशुओं का मुंह पकड़ने वाला
	पास	: दूसरी ओर
	शरकार	: सरकार
	फाला	: हल का ब्लेड़
पश्च:	मोटा	: मोटा
	मैला	: गन्दा

	सोठा	: ड़ंडा

'ऊ' में भी स्वर तन्त्री नासिका विवर व कोमल तालू का पूर्वोक्त कार्य ही है। इस स्वर के उच्चारण के लिए जिह्वा पश्च अपने अधिकतम ऊंचाई तक उठता है। होठ पूर्ण वृत मुखी स्थिति में रहते हैं अपेक्षतया इसके उच्चारण में थोड़ा ज्यादा समय लगता है। इसे उच्च, पश्च वृतमुखी स्वर कहते यह भी तीनों स्थितियों में पाया जाता है :-

अग्र:	ऊट	: ऊंट
	ऊत	: बेबकूफ
	ऊलू	: ऊल्लू
मध्य:	सूरमा	: बहादुर
	पूरा	: सम्पूर्ण
	खूर	: खुर
	फूल	: फूल
पश्च:	निक्कू	: छोटा सा
	चकू	: चाकू
	आलू	: आलू
	पसू	: पशु

'उ' स्वर के उच्चारण में भी स्वर तन्त्री नासिका विवर व कोमल तालू की पहले वाली ही भूमिका रहती है। जिह्वा पश्च कोमल तालू तक उठती है परन्तु उसकी ऊंचाई इस बार 'ऊ' की अपेक्षा कम होती है तथा इसका उच्चारण समय भी अपेक्षाकृत कम ही होता है इसे निम्नतर उच्च पश्च वृतमुखी स्वर कहते हैं। वह अग्र मध्य स्थितियों में ही रहता है :-

अग्र:	उपर	: ऊपर
	उतर	: उत्तर (दिशा) जवाब।
	उठणा	: ऊपर उठना
	उखल	: ओखली
मध्य:	हुक्ड़ू	: हुक्का
	चुश्त	: चुस्त

	कुड़ी	: लड़की
	रुमाले	: रूमाल

जब 'ओ' ध्वनि को पैदा किया जाता है तो नासिक विवर ओ वन्द करने के लिए कोमल तालू उठता है। होंठ वृताकार हो जाते हैं। जिह्वा पश्च एक निश्चित ऊंचाई तक ऊपर उठता है। इस स्वर का उच्चारण समय अपेक्षाकृत लम्बा है। यह उच्चतर, मध्य व पश्च तीनों स्थितियों में होता है :-

अग्र:	ओबरा	: धन धान्य रखने का कमरा
	ओलणा	: तरल पदार्थ में रोटी मिश्रित करके खाना
	ओलिया	: डोरा (रस्सी का)
मध्य:	होर	: और अधिक
	चोर	: चोर
	मोर	: मोर
	रोटी	: रोटी
	जोड़ा	: जूता
	डोर	: धागा
पश्च:	दो	: दो
	चक्को	: उठाओ
	ल्याओ	: लाओ
	सट्टो	: फैंको
	मिज्जों	: मुझे

'औ' ध्वनि में भी कोमल तालु नासिका विवर स्वर तन्त्री की पूर्ववत स्थिति होती है होंठ अपेक्षाकृत कम वृतातार स्थिति में रहते हैं जिह्वा का पिछला हिस्सा कोमल तालू तक उठता है परन्तु जिह्वा का उठना 'ओ' की अपेक्षा कम ही रहता है। इसे निम्न मध्य, पश्च वृतमुखी स्वर कहते हैं तथा यह भी तीनों स्थितियों में प्रयोग किया जाता है :-

अग्र:	औटलना	: इधर-उधर होना
	औरत	: औरत

	औणा	:	आना
	औंतर	:	निःसन्तान
मध्यः	दौड़	:	दौड़
पश्चः	सौं	:	सैंकड़ा
	रौ	:	रहना
	कौ	:	कहना
	नौ	:	नौं (नव)

अनुनासिक स्वरों में उच्चारण नासिका की सहायता से होता है। लिखते हुए इस स्वर के ऊपर चन्द्र बिन्दु या अनुस्वार लगाया जाता है उच्चारण के अनुसार यह भी एक स्वर भेद है।

'ईं' स्वर के उच्चारण में कोमल तालू नासिका विवर तक उठकर उसे बन्द नहीं करता अपितु हवा आंशिक रूप में नासिका विवर से गुजर कर इसका उच्चारण करवाती है तथा बोलबाल में प्रयुक्त शरीर के शेष अंगों का व्यवहार ऐसा ही होता है जैसे 'ई' स्वर के उच्चारण में होता है। यह मध्य पश्च स्थितियों में ही होता है :-

मध्यः	महींसी	:	भैंसें
	पींग	:	झूला
	सींग	:	सींग
	सींगा	:	सिलाई
पश्चः	आंवीं	:	आऊंगी
	ग्रांवीं	:	अपने गांव का
	सांवीं	:	पूरी, पूरा

'ईं' स्वर के उच्चारण में कम्पन होकर आवाज पैदा होती है कोमल तालू विवर को बन्द करने के लिए पूरा नहीं उठता किन्तु हवा का दबाव नासिका विवर में से गुजर कर अनुनासिक 'इं' की ध्वनि का आभास करवाता है। यह अग्र व मध्य दो ही स्थितियों में होता है :-

अग्र:	इंनारी	: इनका
	इंमतहान	: परीक्षा
	इंच	: इंच
	इंतजाम	: व्यवस्था
	इंया	: ऐसे ही
मध्य:	कियां	: कैसे
	किन्ना	: कितना
	जियां	: जैसे

'एं' स्वर का उच्चारण करते हुए होंठों की स्थिति उदासीन रहती है स्वर तन्त्री में कम्पन्न होता है कोमल तालू ऊपर उठता नहीं है अतः नासिका विवर खुला रहता है। यह अग्र मध्य व पश्च तीनों स्थितियों में होता है :-

अग्रः	ऐंवं	: ऐसे ही
मध्य:	सेंजा	: सिचांई की
	सेंदा	: सहना
	केह्णा	: कहना
पश्च:	हीवें	: बर्फ में
	पौग्र्ग्रें	: चाहे

'ऐं' स्वर पैदा करते हुऐ भी बाणी के सभी ग्रंग 'एं' स्वर की ही भान्ति व्यवहार करते हैं कोमल तालू भी नासिका विवर की राह नहीं रोकता ऐं स्वर अग्र, मध्य व पश्च तीनों स्थितियों में ही कहलूरी बोली में प्रयुक्त होता है :-

अग्र:	ऐबें	: सरसरी तौर से
मध्य:	कैंची	: कैंची
	पैंती	: पैंतीस
	मैंटलू	: दही विलोने का मिट्टी का घड़ा
मध्य:	कैंश	: फिकर
	लैंज	: बांस
	शैंकड़ा	: सैंकड़ा
	कैंथ	: एक वृक्ष का नाम

	सैंती	: सैंतीस
पश्चः	कैं	: क्यों
	नैं	: नाखून

'अं' का उच्चारण करते हुए स्वर तन्त्री पूर्ववत् ही रहती है। यह अग्र व मध्य स्थितियों में कहलूरी बोली में प्रयोग होता है।

अग्रः	अंजू	: आंसू
	अंडा	: अंड़ा
	रंदा	: औजार
मध्य	शांद	: शादी की एक रस्म
	सांत	: शांत करना
	बंदा	: व्यक्ति
	प्हांग	: भंग
	कंडा	: किनारा (कांटा)

'आं' का उच्चारण करते हुए भी स्वर तन्त्र पूर्ववत् ही व्यवहार करते हैं कोमल तालू नासिका विवर का रास्ता नहीं रोकता जिसकी वजह से अनुनासिक ध्वनि पैदा होती है। कहलूरी में यह तीनों स्थितियों में पाया जाता है :-

अग्रः	आंगा	: आता हूं
मध्यः	हांऊं	: मैं
	जांगा	: जाता हूं
	चांदी	: चांदी
	सांजा	: शाम को
पश्चः	ईटां	: ईटें
	तेस्सां जो	: उसको
	इख्खा	: इधर से
	कताबां	: किताबें

'उं' स्वर भी अनुनासिक के तौर पर इस क्षेत्र में अग्र, व पश्च तीनों स्थितियों में प्रयुक्त होता है कुछ उदाहरण निम्न-

लिखित है :—

अग्र:	उंह	: ऊंघ
	उंगणा	: ऊंघना
	उंग	: बहाना
मध्य:	रूंगा	: धब्बा
	हुंगा	: होगा
	कुंडा	: सांकल चढ़ाता
पश्च:	मूं	: मुंह
	तूं	: तुम
	नूं	: बहू

'ऊं' स्वर के कहलूरी में अग्र व मध्य स्थितियों में ही प्रयोग के उदाहरण मिले हैं। इसके उच्चारण में भी नासिका विवर खुला रहकर हवा का निकास नासिका से होकर शब्द उच्चारण किया जाता है। उदाहरण हैं :—

अग्र:	ऊंगल	: ऊंगलियां
मध्य:	हुंणी	: होणी
	खुंगा	: पेड़ की कटी शाखा

'ओं' अनुनासिक स्वर कहलूरी में मध्य व पश्च स्थितियों में प्रयोग किया जाता है। इस स्वर के उच्चारण में भी नासिक विवर को कोमल तालू द्वारा किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली जाती :-

मध्य:	होंद	: अस्तित्व
	रोंदा	: रोना
	सोंणा	: सोना
पश्च:	सरों	: सरसों
	बारों	: बाहर से
	बेरों	: भौंह

'औं' में भी ध्वनि तन्त्र पूर्ववत ही व्यवहार करते हैं नासिका विवर का रास्ता खुला होने से वहां से हवा निकलकर उच्चारण

अनुनासिक हो जाता है कहलूरी में इसका प्रयोग अग्र, मध्य व पश्च तीनों स्थितियों में होता है :-

अग्र:	औंस	: औंस
	औंकणां	: हांफना।
	औंसला	: हौंसला उत्साह
मध्य:	चौंकना	: चौकन्ना (आश्चर्य चकित रह जाना)
	पौंकणा	: भौंकना
	नौंणा	: नहाना
पश्च:	सौं	: शपथ
	च्हौं	: चार

उपरोक्त तथ्यों की दृष्टिगत यह कहा जा सकता है कि कहलूरी पर भले ही किंचित प्रभाव पंजाबी का भी हो परन्तु इसकी तुलना होशियारपुर क्षेत्र में बोली जाने वाली शुष्क पंजाबी से नहीं की जानी चाहिए। कहलूरी अपने में एक स्वतन्त्र व व अलग बोली है। जिस में इस क्षेत्र की संस्कृति को संवहन करने की क्षमता है। भाषायी व तात्विक बिश्लेषणों की कसौटी पर भी यह बोली खरी उतरती है अन्य पहाड़ी बोलियों की तरह यह भी एक वजनदार भाषा है। भाषा की संरचना की दृष्टि से अन्य इण्डो आर्यंस भाषाओं की भान्ति इस बोली का विकास भी संस्कृत ही सिद्ध होता है। यह एक सुखद संयोग है।

●

किन्नौर का दर्शनीय बौद्ध गोन्पा टाशीगंग

चन्द्र चीला नेगी

टाशीगंग का दर्शनीय बौद्ध मन्दिर (गोन्पा) हिन्दुस्तान-तिब्बत सीमा पर शिपकीला के समक्ष लगभग 15000 फीट की ऊंचाई पर स्थित है। समस्त सांसारिक विषमताओं से दूर ऐसे शान्त स्थल पर पहुंचना एक स्वप्न सा प्रतीत होता है। टाशीगंग तीर्थ स्थल से लोगों को सर्वप्रथम छोजे शालगम्बा नामक तपस्वी लामा ने परिचित कराया था। यह पावन स्थल नामाझ से लगभग $6\frac{1}{2}$ कि०मी० व नाको गांव से लगभग 7 कि०मी० की दूरी पर स्थित है। यातायात का कोई साधन न होने के कारण इस स्थान तक पहुंचने के लिए स्वयं को वृक्ष विहीन पहाड़ों से गिरते पत्थरों से बचाते हुए पैदल सीधी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। प्रकृति के अदभुत सौन्दर्य से ओतप्रोत वादियां सर्दियों में बर्फ की सफेद चादर से ढक जाती है, इसलिए गर्मी के मौसम में ही भक्तजन यहां तक पहुंच पाते हैं।

टाशीगंग एक प्राचीन गोन्पा है। एक जनश्रुति के अनुसार इस गोन्पा की स्थापना 10वीं शताब्दी में एक लद्दाखी लामा द्वारा की गई थी। प्राचीन इतिहास का प्रतीक यह गोन्पा बाहर से चाहे जर्जर अवस्था में है लेकिन भीतर से यह आज भी अच्छी हालत में है।

गोन्पा के भीतर चरंजी (अवलोकितेश्वर) सिम्बादोर्जे (बज्रसत्व), शक्या मुनि तथा चुचिमशालगोन्बू (महाकाल चर्तुभुज) की प्रतिमाएं स्थापित हैं। इन प्रतिमाओं के मध्य एक पारदर्शी

शीशे के फ्रेम के भीतर छः या सात इंच कीं विचित्र मूर्ति रखी हुई है। कहा जाता है कि इस मूर्ति के जीवित मानव के समान बाल उगते और गिरते हैं और कभी कभार मूर्ति में पानी की बूंदे (जिसे पसीना माना जाता है) भी दिखाई पड़ती है। इसे "जीतून मिलारपा उट्टा" के नाम से जाना जाता है। पहले-पहल इस मूर्ति को भी अन्य मूर्तियों के समान खुला रखा हुआ था लेकिन लोग अनुष्ठान आदि के लिए मूर्ति से बाल उखाड़ कर ले जाने लगे तो स्थानीय श्रद्धालुओं ने मूर्ति को पारदर्शी शीशा लगाकर स्थापित कर दिया।

किंवदन्ती है कि एक तिब्बती महायोगी मिलारेपा ने अपनी साधना पूर्ण करने के पश्चात् साधना शक्ति की परख हेतु एक ही रंग रूप की मिट्टी की तीन मूर्तियां निर्मित की। जब ये मूर्तियां मनुष्य की तरह बोलने लगी तो महायोगी मिलारेपा को लगा कि उनकी साधना सफल हुई है। कहा जाता है कि ये तीनों मूर्तियां हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र में आज भी विद्यमान है। प्रथम मूर्ति इसी बौद्ध गोन्पा में, द्वितीय मूर्ति रोपा गांव (किन्नौर) में है और तृतीय मूर्ति लाहौल स्पिति जिला के एक किसान के घर में है। किन्नौर वाली मूर्तियों के दर्शन वर्ष में एक बार कराये जाते है। कहा जाता है कि टाशीगंग के टूलकु (अवतारी) का आठ बार पूर्नजन्म हुआ है। इनके अतिरिक्त यहां एक मीमीछाम्पा (वृद्ध तपस्वी) नामक एक तपस्वी लामा है जिनके दर्शन प्रत्यक्ष किए जा सकते हैं। इनके चरण छाप वहां पत्थर पर ऐसे अंकित हैं जैसे रेत पर चरण चिह्न अंकित होते हैं।

इतने सुदूर दुर्गम स्थल पर इस तीर्थ स्थान का होना अवश्य ही तपस्वी योगी और प्रकृति स्तब्धता का संयोग रहा होगा। गोन्पा के मुख्य लामा के अनुसार एक समय टाशींगंग टुलकु और रामपुर (बुशैहर) के राजा के मध्य घनिष्ठ मित्रता थी। टूलकु के लिए राजा काफी धन व्यय किया करता था। जिससे रामपुर की जनता रूष्ट हो गई, इस बात पर राजा ने टाशीगंग टुलकु से समस्त रूष्ट जनता के समक्ष

अपनी आलौकिक शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करने का आग्रह किया, टाशीगंग टुलकु ने राजा के आग्रह को मान कर एक बकरी लाने को कहा, बकरी के आने पर टुलकु ने बकरी की गर्दन में एक लाल धागा बांध दिया, फिर राजा से उसकी गर्दन पर बन्दूक से गोली दागने को कहा, गोली दागी गई परन्तु बकरी का बाल बांका तक नहीं हुआ। राजा ने प्रसन्न होकर टुलकू को अपनी रियासत से उनकी पसन्दानुसार दो बीघा ज़मीन मांगने का अनुरोध किया। टुलकू ने टाशीगंग की ज़मीन मांगी और वहीं पर रहना शुरू कर दिया। राजा ने इस क्षेत्र में सिपाहियों का प्रवेश निषेध कर रखा था। इस बौद्ध गोन्पा को एक-दो शताब्दी तक माफीदार गोन्पा के नाम से जाना जाता रहा है। सिपाहियों के प्रवेश निषेध के कारण चोर-लुटेरे इस क्षेत्र मे छुपने आते थे। रामपुर की महारानी ने टाशीगंग तक आने-जाने वाले श्रद्धालुओं की सुविधा हेतु "छमू लागङ छेन खाम्पा" 'सतलुज नदी' पर एक पुल का निर्माण करवाया, जिसे आज भी रानी पुल के नाम से जाना जाता है।

यदि हम टाशीगंग की ऊंचाईयों से चारों दिशाओं की ओर दृष्टिपात करे तो स्तब्ध घाटियां ऐसी प्रतीत होती हैं मानों जीवन रुक सा गया हो। तनिक नज़र झुका कर देखे तो सतलुज नदी ज़मीन पर खींची एक टेढ़ी-मेढ़ी लकीर सी प्रतीत होती है पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य चौंका देने वाली तीव्र हवाओं का झौंका जब शरीर को स्पर्श करता हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कोई आपके विमुख खड़ा होकर कुछ कहने को आतुर हो।

जैसा कि लेख में पीछे कहा गया है इस धार्मिक स्थल तक पहुंचने के लिए यातायात का कोई साधन नहीं है केवल नेक इरादों के सहारे ही यहां पहुंच सकते हैं ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस गोन्पा में आकर मांगी गई मुरादें अवश्य ही पूर्ण होती हैं।

●

ब्रजेश्वरी देवी का नगर कोट धाम मन्दिर

डॉ॰ वेद प्रकाश अग्नि

परम पिता परमात्मा ने इस पृथ्वी-मण्डल (भूमि के गोले) का का निर्माण अच्छी तरह से सोची-समझी योजना के तहत किया है। इसका उद्देश्य सारे जीवों को भोग और मोक्ष प्रदान करना है। इसमें कुछ स्थान मोक्ष देने वाले हैं, कुछ भोग देने वाले और कुछ गिने-चुने स्थान भोग और मोक्ष दोनों को देने वाले हैं। महामाई ब्रजेश्वरी देवी का श्री नगरकोट धाम भोग और मोक्ष दोनों को देने वाला है।

महामाई ब्रजेश्वरी देवी जालन्धर महापीठ की मुख्य देवी है। यह पीठ चक्र रूप और कुदरती तौरपर प्राकृतिक सात पहाड़ी चक्रों से घिरी हुई है। इसे जन्म मरण के बन्धन से छुड़ाने वाली दो पवित्र नदियां ब्यास और बाण गंगा घेरे हुए हैं। ब्यास नदी भगवान बेद ब्यास की तपोभूमि ब्यास कुण्ड से निकली पवित्र नदी है और बाण गंगा सुप्रसिद्ध पाण्डव अर्जुन द्वारा बनाए गए अर्जुन सरोवर और उसमें स्थापित भगवान शंकर के बाण-लिंग से निकलने वाली पवित्र जलधारा है जो उग्रचामुण्डा के उपरले भाग धौलाधार की बर्फीली पहाडियों में विराजमान है। इस प्रकार महामाई ब्रजेश्वरी का परमधाम अत्यन्त रमणिक घाटी में है जिसके एक ओर कलकल करती हुई बाण गंगा बहती है सामने बर्फ से ढकी हुई चांदी की तरह चमचमाती हुई धौलाधार है तथा पीछे हरे-भरे जंगलों से सुशोभित शान्त वातावरण है। इसी स्थान पर ही भगवती ब्रजेश्वरी का सनातन मंन्दिर शोभायमान है।

महापीठ जालन्धर के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है कि यह पीठ मुनियों द्वारा पूजी गई बहुत पवित्र और सबसे उत्तम पीठ है। यह श्री चक्र की शक्ल की है। इसके बीच की तिकोण की शक्ल वाली बिन्दु-विसर्गात्मक त्रिकोण त्रिकूट के बिन्दु स्थानीय बागीचे में विराजमान भगवती ब्रजेश्वरी साक्षात परमेश्वरी है। यह ब्रह्मस्वरूपिणी है। सारे ब्रह्माण्ड की महारानी है। यह जागती जोत सदा सत् चित् और आनन्द रूप हैं। इनके श्री नगरकोट धाम में विराजमान होने का इतिहास भी बड़ा रोचक है।

एक समय दक्ष प्रजापति ने बड़ा भारी यज्ञ अपनी राजधानी कनखल (हरिद्वार) में किया। उसमें देश-विदेश के बहुत से राजाओं, ऋषियों, मुनियों, देवताओं और ब्राह्मणों को आमंत्रित किया गया। शंकर के मस्त-मौला रहन-सहन से अप्रसन्न दक्ष ने यज्ञ में अपने दामाद भगवान शंकर और पुत्री पार्वती को बुलावा नहीं भेजा। पिता के घर यज्ञ को जाते हुए देवताओं आदि को देख कर पार्वती से नहीं रहा गया। वह मोह वश यज्ञ देखने जाने का आग्रह कर बैठी। भगवान शिव के मना करने पर भी कि बिना निमन्त्रण के वहां जाना ठीक नहीं, पार्वती जी के आग्रह को देखते हुए शिव जी ने कुछ गणों की सेना सहित उन्हें कनखल पिता के घर भेज दिया। यज्ञ स्थान पर अपने पति का स्थान व यज्ञ भाग न देख कर अपमान की पीड़ा से व्याकुल पार्वती क्रोध से तिलमिला उठीं। वह अपमान को सह न सकी तब वहां उपस्थित सभी को कठोर वचन कहती हुई वे क्रोध से व्याकुल होकर और यह सोचकर कि पति के पास किस मुंह को लेकर जाऊंगी यज्ञ विध्वंस करने की मन में ठान कर वह यज्ञ कुण्ड में कूद पड़ी। पार्वती के आत्मदाह का भयंकर समाचार मिलते ही क्रोधित शंकर ने एक विशाल सेना वीरभद्र नेतृत्व में यज्ञ को विध्वंस करने के लिए भेजी जिस ने यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

यज्ञ विध्वंस के बाद भगवान शंकर पार्वती (सती) के जले हुए शरीर को लेकर वियोग की व्याकुल दशा में सारे

ब्रह्माण्ड में विचरणे लगे। इससे सृष्टि का सारा क्रम रुक सा गया। तब देवताओं की प्रार्थना पर भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से सती के बावन टुकडे कर दिए। जहां-जहां ये टुकड़े गिरे वह-वह स्थान शक्ति पीठ कहलाते हैं। ज्वालामुखी में जिह्वा, चिन्तपुर्णी में चरण, नैना देवी में नेत्र तथा ब्रजेश्वरी देवी में बामङ्ग। (बांया स्तन और हृदय) गिरा। इसी से इन्हें ब्रजेश्वरी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इस स्थान की यह और भी विशेष महिमा है कि जब देवी ने राक्षसों का वधकर विजय प्राप्त की तो देवी देवताग्रों ने मिलकर जहां-जहां देवी को चोटें ग्राई थी वहां-वहां घी का लेप किया। इस परम्परा का आज भी मकर-संक्रति (लोहड़ी की अगली रात) को पालन होता है। उस रात से लेकर एक सप्ताह तक माता के उपर पांच मन देसी घी, एक सौ बार कुएं के शीतल जल में धोकर मक्खन तैयार करके मेवों और अनेक प्रकार के फलों से सजाकर चढ़ाया जाता है।

भगवती ब्रजेश्वरी माता सनातन देवी है। वेदों में उन्हें ही ब्रज वृषा, महागौरी, सोमा या सोम और "जातवेदाग्नि" नाम दिया गया है। यह संसार को चलाने वाले महातेज से भरी हुई असीम शक्ति का पुंज और स्त्रोतमयी शिव की महा-रूद्र शक्ति हैं। सारे ब्रह्माण्ड की जान में जान भर देने वाली प्रचण्ड शक्ति को शास्त्रों में "चिदाकिम" कहा गया है। यह अग्नि, सृष्टि, पालन और संहार का काम करने में समर्थ अचूक शक्ति है। यह देवताओं को वरदान देने और इनका काम पूरा करने में सदा तत्पर और सहायक रहती हैं। यह जालन्धर दैत्य द्वारा पूजी गई "धी" शक्ति अर्थात विवेक शक्ति या परमेश्वर शिव का ज्ञान कराने वाली महाशक्ति हैं। इसका दूसरा नाम "मेधाग्नि" है। "मेघा" ऋषि ने इसी शक्ति रूपी "अग्नि" का ज्ञान प्राप्त करके दुर्गा सप्रशति के राजा सुरथ व समाधि वैश्य का कल्याण किया था। यही गायत्री शक्ति पूजने और अपनाने योग्य 'व' अक्षर वाली मूला प्रकृति या आद भवानी है जो शक्तिशाली पालन और सन्तुष्ट करने वाली

इच्छा शक्ति है। इसी बल के "भरोसे" पर भगवती ब्रजेश्वरी माता अपने भक्तों की भोग-मोक्ष की नाना इच्छाओं को पूरा करती हैं।

जालन्धर दैत्य मेघाग्नि रूपा ब्रजेश्वरी की अराधना कर माता दुर्गा के नौ रूपों में से आठ रूपों तारा, चामुण्डा, भद्र-काली, बगलामुखी, भुवनेश्वरी, महाकाली, ज्वाला, जयन्ती (अपराजिता) को अपने बस में किया हुआ था। ये सदा उसके अंग-संग रहा करती थीं। जालन्धर दैत्य वरदानी था। उसका जन्म भगवान शंकर के तीसरे नेत्र की रूद्राग्नि (क्रोधग्नि) से हुआ था। एक समय की बात है भगवान शंकर नंगे वेश में सिंहारण्य में रास्ता रोक कर बैठे हुए थे। उधर से देवताओं के राजा इन्द्र देव गुरू वृहस्पति के साथ गुजरे। इन्द्र ने नंगे वेश वाले शिव को रास्ते से हटने के लिए कहा। जब वे नहीं हटे तो इन्द्र अपना ब्रज लेकर उन पर प्रहार करने को ज्यों ही तैयार हुए त्यों ब्रज समेत उनका हाथ और शरीर जड़ हो गया। उसे अपने बल के घमण्ड पर ग्लानि हुई। उसने शिव से क्षमा मांगी तथा गुरू वृहस्पति महादेव के भक्तों पर जल्दी प्रसन्न हो जाने की विरद स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने अपने तीसरे नेत्र की क्रोधाग्नि को खारे समुद्र में छोड़ दिया। उसी से महापराक्रमी दैत्यराज जालन्धर का जन्म हुआ और इसीलिए वह रूद्र या शिव पुत्र माना गया। मां ब्रजेश्वरी की भक्ति से उसपर आठ दुर्गाओं की कृपा हुई। उनके वर से अत्यन्त प्राचीन काल में उसने त्रिगर्त देश पर राज्य किया। उसका राज्य सोलन की पहाड़ियों से लेकर मुल्तान (मूलस्थान) तक फैला हुआ था। मथुरा के राजा काल-नेमि की सुपुत्री वृन्दा से उनका विवाह हुआ था। ऋषियों-मुनियों के यज्ञ भ्रष्ट करना और देवताओं को पीड़ा देना उसका आच-रण हो गया था। देवताओं की प्रार्थना पर भगवान शिव ने भगवान विष्णु की सहायता से इस दैत्य का बध इसी महापीठ जालन्धर में ही किया था। इस पीठ का क्षेत्र विस्तार 64 कोस का है। मरते समय जालन्धर दैत्य को भगवान् विष्णु ने वरदान दिया कि मैं तुम्हारे इस 64 कोस के क्षेत्र के देह स्वरूप में

प्रवेश होकर सदा निवास करूंगा। इस प्रकार जालन्धर महा-पीठ भूमि देह भाव से महाविष्णु स्वरूप वाली है। इसलिए सब प्रकार के पालन-पोषण करने वाले सत्कर्मों के लिए के यह बहुत ही पवित्र यज्ञ कर्म करने की परम भूमि है। जालन्धर को दिए गए दूसरे वरदान के अनुसार इस भूमि पर 12 तेजोलिगों-मुकुटनाथ, बैजनाथ, पल्लिकेश्वर, महाकाल, कुंजद्वार चौमुखा, कालेश्वर, कश्यपेश्वर, करवीशेश्वर, गंगेश्वर, नंदिकेश्वर तथा त्र्यम्बेकेश्वर का स्वयं भू रूप में प्रकट हुआ है। इस कारण यह भूमि अखण्ड और प्रचण्ड रूद्र-तेज की तपोभूमि है। आठ दुर्गाओं के वरदान के कारण यह बड़ी शक्ति शाली यज्ञ भूमि है। इसलिए वैष्णव, शैव, शाक्त सब प्रकार के कर्म इस तेज पूर्ण भूमि में सदा फलीभूत होते आए हैं, ऐसा सदियों से साधकों का अनुभव चला आ रहा है। भगवती ब्रजेश्वरी इसी रूद्र शक्तिमयी महातेजपुंज पवित्र यज्ञ और साधना भूमि की मध्य बिन्दु में विराजमान होने वाली महारानी महामाई हैं। यह महारौद्र शक्ति है। इन्हें कामेश्वरी, भगमालिनी, वृहीवासिनी, सुमंगला, षोडशी और कुलसुन्दरी भी कहा गया है। 'कुलसुन्दरी' होने से कौल विधि से इनकी उपासना पर जोर दिया गया है।

रोहड़ू क्षेत्र का देव उत्सव प्रतिष्ठा

गंगादत्त शास्त्री 'वेदाचार्य'

यद्यपि हिमाचल में देवी-देवताओं से सम्बन्धित अनेक उत्सव मनाए जाते हैं जिनके मूल में देवभूमि की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्परा की धरोहर का बीज रहता है तथापि कुछ ऐसे उत्सव भी है जिनमें इस धरोहर के अतिरिक्त लोकाचार और लोकरंजन की दृष्टि से एक विशेष आकर्षण दिखाई देता है। रोहड़ू तहसील का एक ऐसा ही उत्सव है "प्रतिष्ठा" जिसे हजारों लोग एकत्रित होकर तीन दिनों तक आनन्द विभोरता में मनाते रहते हैं। प्रतिष्ठा का अर्थ है शुद्धिकरण, मन्दिर के जोर्णाद्वार के बाद उसकी शुद्धि के लिए हवन आदि किया जाता है। शुद्धिकरण की इस प्रक्रिया में परशुराम जी का विशेष योग-दान होता है अतः इस अवसर पर भगवान परशुराम को आमन्त्रित किया जाता है। निमन्त्रण पाकर परशुराम के प्रतीक कलश की विशाल और वैभव पूर्ण साज सज्जा के साथ झांकी निकाली जाती है। जिसके पीछे लोक वाद्य यन्त्र, शहनाई, रणसिंगा तथा नगारे आदि अनेक वाद्यों के साथ हज़ारों की भीड़ चलती है। कुछ युवक युवतियां देवता सम्बन्धी नृत्य करते, गीत गाते चलते हैं। झांकी मेजबान गांव की ओर प्रस्थान करती हैं, उधर गांव की ओर से भी हजारों लोग एकत्रित होकर भगवान परशुराम के स्वागत के लिए पुष्पमालाएं और नैवेद्य पात्र लेकर धूप दीप के साथ अत्यन्त श्रद्धा विभोर होकर खड़े रहते हैं। आस-पास के बीसियों गांव इस उत्सव की धारा में अपने को जैसे आत्मसात ही कर लेते हैं। भगवान परशुराम की झांकी गांव में पहुंचते ही भगवान परशुराम की जय-जय के नारों से आसमान गूंज उठता है।

अपने शिष्यों के साथ परशुराम जी इस प्रकार का स्वागत पूर्ण अतिथ्य पाकर उनके लिए बनाए गए विशेष मन्दिर जैसे मण्डप में आकर विराजमान हो जाते हैं। श्रद्धालुओं की अनियन्त्रित भीड़ सारे गांव को एक धार्मिक उत्सवीय परिवार में समेट लेता है। तत्पश्चात् एक विशाल भोज का आयोजन होता है जो निरन्तर तीन दिनों तक चलता है जिसमें सबके लिए समान रूप से भोजन करने का निमन्त्रण रहता है पूरी कचौरी, शाक, दाल, भात तथा मांस का इस रसोई में खुला प्रयोग रहता है। मांस के लिए तो पच्चासों बकरे काटे जाते हैं। बीच-बीच में सुरापान भी बहुतों द्वारा किया जाता है। दिन रात युवक-युवतियां, बूढे प्रौढ़ आदि सब अवस्थाओं के लोग हाथ से हाथ मिलाकर नाटी करते हैं तो दूसरी ओर देव पूजा के घण्टे, ढफले आदि कर्ण भेदी ध्वनियों से वातावरण को गुंजायमान करते रहते हैं। एक अद्‌भुत और चमत्कार पूर्ण दृश्य तथा उल्लासमय वातावरण बना रहता है, तीन दिनों तक चलने वाले उत्सव में प्रधान अतिथि परशुराम और कुछ अन्य देवता भी पूज्य अतिथियों के रूप में बुलाए जाते हैं। इस प्रकार उत्सव स्थल पर देवताओं की रंग बिरंगी झांकियां और पीछे अथाह जनप्रवाह, जय-जय ध्वनियां आदि अदभुत दृश्य पैदा करता है। प्रत्येक देव झांकी के साथ उसकी मण्डली जिन्हें खूंद कहा जाता है, भी आती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों से आए हुए ये अतिथि मण्डलियां आपस में एक परिवार जैसी घुल मिल जाती है।

परशुराम इस उत्सव के गुरू माने जाते हैं शेष उनके शिष्य। इसी कारण झांकी आने पर भीड़ उमड़ कर उन्हें गुरू दक्षिणा प्रदान करती है। गुरू शिष्यों का सम्वेदना भरा मेल होता है। गुरू को एक विशाल मण्डल में बिठाया जाता है। शेष देवताओं की झांकियों को लोगों द्वारा नचाया जाता है। जिन्हें देखकर दर्शकों को अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती हैं। रात को सब देवता मन्दिर के अन्दर चले जाते हैं तथा उनके भोजनार्थ लंगर तैयार होने लगता है। लंगर बड़ा विशाल होता है, जिसमें पच्चासों क्विंटल अनाज पकता है। भोजन के

उपरान्त युवक-युवतियों के नाच गाने प्रारम्भ होकर रात भर चलते रहते हैं।

दूसरे दिन पुजारी तथा विशेष लोग मन्दिर की छत पर चढ़ कर उसकी देव पूजा करते हैं जिसे स्थानीय बोली में शीख पूजना कहते हैं और देवता के नाम तथा काली पुजन के नाम पर बकरों की बलि भी दी जाती है। उधर देवताओं को नचा-नचा कर जनता का मनोरंजन किया जाता है।

विसर्जन

तीसरे दिन उत्सव का विसर्जन किया जाता है। सर्वप्रथम परशुराम जी के लिए नया मण्डल तैयार किया जाता है। हजारों लोगों की भीड़ में परशुराम की झांकी वहां आकर ठहरती है अन्य देवताओं की झांकियां भी साथ होती हैं। वाद्य यन्त्रों तुमुल नाद से दिशाएं गुंजायमान होने लगती हैं। पुष्पवर्षा जय जयकार नाच-गान खुशी में मस्ती से झूमना आदि क्रियाएं वहां सर्वसाधारण हो जाती हैं। अपार श्रद्धा और आनन्द का सागर उमड़ता है। भगवान परशुराम की झांकी उठ जाने पर मण्डप खण्डित कर दिया जाता है। यही है विसर्जन। उत्सव की समाप्ति का सूचक।

भगवान परशुराम की इस प्रकार की असाधारण मान्यता और पूजा से इस तहसील की पौराणिक परम्परा और परशुराम से सम्बन्धित इस प्रदेश के ऐतिहासिक घटना चक्र के रहस्य का पता चलता है कि विशेष कर परशुराम जी इस प्रदेश पर कैसे छा गए थे। इस पर खोज करने की प्रेरणा भी मिलती है।

●

रोहतांग और साच दर्रे के बीच प्रकृति एवं संस्कृति का अनूठा समन्वय

बीरबल शर्मा

'रोहतांग पास' जिसे रुहंतांग अर्थात् लाशों का मैदान भी कहा जाता है, राष्ट्रीय उच्चमार्ग 21 पर मनाली से 56 किलोमीटर ऊपर शिखर का दर्रा है। जनजातीय क्षेत्र लाहौल स्पिति की सीमा यहीं से शुरू होती है। हिमाचल के जनजातीय क्षेत्रों किन्नौर, लाहौल स्पिति व चम्बा के पांगी व भरमौर के कई इलाकों को जाने के किए लोग अधिकतर रोहतांग पास का रास्ता ही अपनाते हैं क्योंकि इतनीं ऊंचाई पर सड़क की सुविधा इसी राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर है। प्रकृति के सौन्दर्य और बर्फ से ढकी चोटियों के दर्शन करने लाखों लोग साल भर कुल्लू, मनाली व रोहतांग तक जाते है, मगर अधिकतर पर्यटकों में से कुछ ही इसके पार बसी दुनियां के जनजीवन को नजदीक से देख पाते है। खूबसूरती का आलम हो या फिर कला व पुरातत्व की बात हिमाचल के इन जनजातीय क्षेत्रों में बहुत कुछ है जो शायद अभी प्रकृति प्रेमियों और पर्यटकों को देखना है।

3955 मीटर की ऊंचाई पर स्थित रोहतांग दर्रा साल में पांच या छः महीने पूरी तरह बर्फ से ढका होता है और इसी बीच लाहौल स्पिति व पांगी घाटी के जनजीवन में एक ठहराव-सा आ जाता है। रोहतांग और मनाली के बीच 56 किलोमीटर का फासला अधिकतर चढ़ाई का है। वाहंग, पलचान, कोठी गुलाबा, मढ़ी (3279 मीटर) और रोहतांग पास विपाशा के किनारे बसे ये गांव अपनी खुबसूरती से यहां आने वाले लाखों

पर्यटकों को साल भर आनन्दित करते रहते हैं। सोलंग नाला हो चाहे राहला फाल या फिर रानी नाला, बर्फ और पानी के आकर्षक लुभावने दृश्यों से देश के हर कोने से आए पर्यटकों की थकान पूरी तरह मिट जाती है। 'रोहतांग पास' के साथ ही पत्थर की विशाल चट्टान के बीच से निकलती धारा जो विपाशा का उद्गम स्थल है को महर्षि व्यास की तपोभूमि माना जाता है। इसी जगह स्थित, 'व्यास कुंड' को ज्यादातर पर्यटक अपना लक्ष्य मानकर वापसी का रूख करते हैं यहां से कुछ ही मीटर दूर से शुरू होता है लाहौल का जनजातीय क्षेत्र, जो खूबसूरती या प्रकृतिक सौन्दर्य में किसी से कम नहीं।

रोहतांग से ठीक नीचे 20 किलोमीटर पर बसा खोकसर गांव (2105 मीटर) लाहौल की मुख्य नदी चन्द्रा के तट पर बसा है। इस गांव से पहले पांच किलोमीटर पर 'ग्राम्फु' से एक मार्ग काजा और किन्नौर को जाता है 'ग्राम्फू' से वाया कुंजुम जोत 137 किलोमीटर दूर है। यह लाहौल स्पिति जिले का ही एक उपमण्डल है और जनजातीय व दूर-दराज का इलाका होने की वजह से यहां अतिरिक्त जिलाधीश ही सर्वेसर्वा होता है। 'खोकसर' से शुरू लाहौल घाटी केलंग की ओर जो इस जिले का मुख्यालय है चली जाती है। इसके दोनों ओर 13-14 हजार फुट की ऊंची पर्वतमालाएं हैं जो ग्लेशियरों व बर्फ से अक्सर ढकी रहती है। हरियाली के नाम पर चंद्रा नदी के आस-पास के इलाकों में गेहूं, जौ, आलू आदि की खेती होती है। ऊपरी सतहों में कोई वनस्पति इस घाटी में नहीं होती। गांव जो ज्यादातर 10 हजार और 11 हजार की ऊंचाई पर बसे है उनके आस-पास 'बैले' नाम के वृक्ष होते है जो पशुओं को चारे व लोगों को इंधन का काम देते हैं।

खोकसर से केलंग के लगभग 40 किलोमीटर लंबे इस राष्ट्रीय मार्ग पर शिशु, गोंधला, सुलिगं तान्दी आदि गांव है। खोकसर से 20 किलोमीटर पर हरे भरे बैले के पेड़ों व खूबसूरत खेतों के बीच वसा गांव शिशु है। शिशु गांव के सामने चंद्रा नदी के उस पार एक बहुत ही सुन्दर झरना बहता है जिसे

''शिशु फाल'' कहते है। चन्द्रा नदी के दाहिनी ओर आगे चल कर इसी मार्ग पर गांव गोंधला पड़ता है इस गांव में एक काफी ऊंचा किला है, यहां किसी समय 'बीड़ भंगाल' राज्य की राजधानी भी, जो 1200 ई० के आस-पास भंगाल से आए राजाओं ने बसाई थी। गोंधला किला अपने आप में पुरातत्व, काष्ठ नक्काशी के लिए अद्वितीय है। केलंग से सात किलोमीटर पहले 'तान्दी' में चन्द्रा नदी अपनी सहयोगी 'नदी' 'भागा' से मिलती है यह खूबसूरत संगम पूरे लाहौल के लोगों की आस्थाओं का केन्द्र है।

लाहौल की पट्टन घाटी :-

लाहौल घाटी की तांदी का संगम स्थल सारे लाहौल वासियों की गहन आस्था का केन्द्र है। यहां मृत लोगों की हड्डियों को विसर्जित करने का रिवाज भी है। इसी संगम स्थल से शुरू होती है आगे की ओर 'पट्टनघाटी' पूर्व की ओर 'भागा घाटी' और खत्म होती है चन्द्रा घाटी। तान्दी से केलंग की ओर राष्ट्रीय उच्चमार्ग लेह-लद्दाख तक जाता है। इसे दुनिया के सबसे ऊंचे मार्गों में जाना जाता है।

तांदी केलंग से सौन्दर्यपूर्ण पट्टन घाटी शुरू होती है। ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों के आगोश में सिमटे गांव ज्यादातर चन्द्रभागा नदी नदी के आस-पास बसे है। ये गांव दिसम्बर से मार्च तक बर्फ से ढके रहते हैं। बर्फ के पिघल जाने के बाद ही इन गांव के जनजीवन में सक्रियता आती है। पट्टन घाटी जो तान्दी से उदयपुर तक चन्द्रभागा नदी के साथ-साथ फैली है लाहौल घाटी के मुकाबले ज्यादा हरी-भरी है। यहां देवदार के वृक्ष भी कहीं-कहीं नज़र आते हैं। इस घाटी का मुख्य उत्पादन गेहूं, जौ मक्की, सरसों आदि है। पट्टन घाटी में पैदा होने वाली 'हॉपस' को प्रदेश और देश के बाहर भी भेजा जाता है। इसे शराब और बीयर बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। यह हॉपस जो 'बेलो' के रूप में होती है, 15 से 20 रुपये किलो बिकती है। यहां का एक विशेष उत्पादन 'कुठ' निर्यात किये जाने वाला उत्पादन है। जिसे खुशबू

आदि के लिए प्रयुक्त किया जाता है। एक जानकारी के अनुसार 'कुठ' को अब चीन अमेरिका आदि देशों में भी निर्यात किया जाता है। लाहौल में यह कुठ 15-20 रुपये किलो के हिसाब से उपलब्ध होती है। पट्टन घाटी की यात्रा के दौरान एक विशेष प्रकार की गाय देखी गई, इसे 'चूरी' कहते हैं यह यहां के विशेष पशु 'याक' की नस्ल है। याक द्वारा ही यहां खेती भी की जाती है। याक एक विशालकाय भैंसे की तरह का पशु है।

पट्टन घाटी में लाहौल घाटी की भूरी मटमैली मिट्टी कम हो जाती है। सेब और बादाम भी इस घाटी में कहीं-कहीं होता है। ज्यादातर खेत आलुओं से हरे-भरे होते हैं। करगा, ठोलंग शार्विग, लोट, कीरतिंग, जाहलमा, मुरिंग, थिरोट, कुकुमसेरी आदि गांवों के बाद उदयपुर कस्बा है। तान्दी से उदयपुर तक सारी घाटी नौ हजार से दस हजार फुट की ऊंचाई तक जन जीवन से भरी पड़ी है। सड़क का निर्माण सेना की 70 आर. सी. सी. कम्पनी ग्रीफ द्वारा किया जाता है। लाहौल और पट्टन घाटी में जगह-जगह हमने छोटे-छोटे मन्दिरनुमा स्तम्भ देखे। इन्हें 'छोड़तन' कहते हैं। यह किसी विशेष व्यक्ति की याद में स्मृति चिह्न बनाए जाते है। खुले स्थान पर गांव से बाहर यह बड़े खूबसूरत शैली के बने होते हैं। आकार में यह काफी छोटे होते हैं। यहां के मुख्य व्यंजन चोचों, मोमों और 'थूपा' बहुत प्रसिद्ध है। मोमों समोसे की तरह होता है, जिसमें मेदे की परत के अन्दर मीट और 'मसाला' डाला होता है तथा इसे विशेष पात्र में भाप द्वारा पकाया जाता है। थूपा भी मेदे की सेंविया जो भाप द्वारा ही तैयार होती है को मीट आदि के साथ परोसा जाता है। पट्टन घाटी में थिरोट नाला में आजकल एक विद्युत उत्पादन केन्द्र निर्माणाधीन है। अभी तक यहां रात को बिजली उपलब्ध कराने के लिए छोटे-छोटे बिजलीघर पूर्ति कर रहे हैं क्योंकि बर्फ के दौरान लम्बी दूरी से आने वाली लाईनें टूट जाने का भय बना रहता है। अतः इस घाटी में बिजली की पूर्ति इन्हीं छोटे-छोटे बिजली घरों से होती है।

लोग जो दिसम्बर से मार्च तक बर्फ में घरों के अन्दर कैद होकर रह जाते हैं पशुओं के लिए चारा बेलें, वृक्षों की टहनियों व घास घरों पर ढेर लगाकर रख लेते है खाने पीने का सामान भी इन दिनों के लिए घर के अन्दर ही रखने की व्यवस्था होती है। मार्च में बर्फ हटाने का काम विधिवत् शुरू हो जाता है। यहां के एक व्यक्ति के अनुसार बर्फ पर मिट्टी खोदकर डाली जाती है, जिससे बर्फ जल्दी पिघल जाती है। बर्फ हटाने के लिए बकायदा पूजा करके श्री गणेश किया जाता है। अप्रैल से नवम्बर तक यहां का जनजीवन आमतौर पर सामान्य रहता है।

घाटी के अधिकतर लोग सिंग-सिंग, छांग आदि मादक पेय पदार्थों का उपयोग करते हैं। यह सब पेय यहीं जड़ी-बुटियों जौ आदि से तैयार किये जाते हैं। सर्दियों में तो इनका सेवन राम-बाण की तरह होता है। औरते, मर्द या फिर युवा भी बिना झिझक से इसका आनन्द से सेवन करते हैं।

त्रिलोकनाथ तथा उदयपुर :-

लाहौल स्पिति का त्रिलोकनाथ मन्दिर त्रिलोकपुर गांव में है। सैकड़ों लोग इस मन्दिर के लिए प्रदेश के अन्य भागों से आते हैं। यहां जाकर बच्चों के मुंडन संस्कार कराने की परम्परा भी है। यह गांव सन् 1401 में त्रिलोक नामक राजा ने बसाया था। गांव के पश्चिम की ओर तो खेत खलिहान और जंगल हैं लेकिन पूर्व की ओर यह गांव एक किलानुमा ढांक पर टिका है। आजकल त्रिलोकनाथ मन्दिर तक सड़क की सुविधा भी है। मन्दिर कितना प्राचीन है, इसका अनुमान मन्दिर को देखकर लगाना मुश्किल लगता है क्योंकि पुरातत्व के अज्ञानियों ने इस पर सींमेंट और रंग पोत कर अपना रंग चढ़ा दिया है। मन्दिर के गर्भ में शिव की प्राचीन संगमरमर की मूर्ति है और साथ में ही बौद्ध गुरु की पाषाण प्रतिमा भी है।

यह मन्दिर शिखर शैली का है और पत्थरों से बना है। इसके चारों ओर मकाननुमा सराय बना देने से मात्र शिखर

का हिस्सा ही नज़र आता है। इसका परिसर काफी विस्तृत है और यहां रहने आदि की सुविधा भी उपलब्ध है। मन्दिर का पुजारी यहां एक लामा है जो गर्म तबीयत का व्यक्ति हैं। मन्दिर के गर्भ गृह का छायांकन वर्जित है। मूर्तिस्थल के दरवाजे के पास दो स्तम्भ हैं जो दीवार से कुछ हट कर है। यहां यह मान्यता है कि जो व्यक्ति इन स्तम्भों से तीन बार आसानी से गुजर जाए तो वह पापी नहीं होता। अपने दौरे में हमारा ग्रुप भी यहां अपने पुण्य होने का परिचय देने से नहीं चूका। यहां पत्थरों पर कारीगरी के कमाल पर भी रंग चढ़ा देने से पुरातत्व को हानि हुई है। मूर्तिस्थल के बाहर एक बहुत बड़ी ज्योति जलती रहती हैं, जिसमें हर समय घी भरा रहता है। परिसर में लामाओं ने अपना धार्मिक परिवेश स्थापित कर रखा है।

8551 फुट की ऊंचाई पर चन्द्रभागा नदी के बगल में बसा उदयपुर एक मैदानी कस्बा है। सेना की सड़क निर्माण कम्पनी आर. सी. सी. 70 ने यहां के सौन्दर्य को और निखार रखा है। हैलीपेड की सुविधा भी यहां है। इसी कंपनी के कई भवन, एक मन्दिर और मृकुला देवी का विख्यात मन्दिर भी उदयपुर में है। किसी समय यह पांगी घाटी में ही आता था। अब यह लाहौल-स्पिति जिले की ही एक तहसील हैं।

उदयपुर का माता मृकुला का मन्दिर सैकड़ों वर्ष पुराना है। मृकुला देवी की मूर्ति को सातवीं शताब्दी का माना जाता है। इस मन्दिर का निर्माण इसी शताब्दी के आस-पास हुआ बताया जाता है। काष्ठ कला की दृष्टि से मृकुला देवी का मन्दिर भारत के मन्दिरों में माना जाता है। पूरी तरह लकड़ी से बने इस मन्दिर के गर्भ का पोर-पोर काष्ठ कृतियों से खुदा पड़ा है। शिव-पार्वती का विराट रूप, द्रोपति स्वयंवर के दृश्य, तपस्यारत बुद्ध, वामन अवतार, महाभारत का वर्णन, राम लक्ष्मण, सुग्रीव, वानर राक्षस, लंका के रावण, कुंभकरण, पांडव राजतिलक, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, इन दस शक्तियों का बारीकी से वर्णन आदि सैकड़ों चित्र इस बखूबी से लकड़ी पर उतारे हैं कि इन्हें देखकर उस

समय की कला के आगे कोई भी नमस्तक हो जाए। इसे एक या दो दिन के समय में ही अच्छी तरह पढ़ा और जांचा जा सकता है। इस मन्दिर में हिन्दू और लामा लोग निरन्तर आते हैं। श्रद्धा की दृष्टि से यहाँ आवागमन प्रायः बना रहता है। प्रदेश ही क्या पूरे देश व विदेश के पर्यटकों ने भी यहां का भ्रमण किया है और इसकी काष्ठ कला के बारे में कई पुस्तकों में वर्णन किया है। मन्दिर के बाहर पड़ी पनघट शिला भी यहां किसी बड़े पनघट होने का प्रमाण है। इस समय यह मन्दिर भारतीय पुरातत्व विभाग की देख-रेख में है।

चन्द्रभागा नदी अपने नाम में परिवर्तन करके 'चिनाव' नाम में आगे बढ़ती है और फिर उदयपुर से तीन्दी घाटी में प्रवेश करती जाती है। उदयपुर से तीन्दी 24 किलोमीटर दूर है और यहीं पर लाहौल-स्पिति सीमा समाप्त हो जाती है। इसके आगे रोहली, जो 12-13 कि. मी. है तक बस की सुविधा है। रोहली पांगी घाटी में आता है तीन्दी घाटी खुली कम तंग ज्यादा है। यहां ऐसा लगता है कि दोनों ओर से पहाड़ों का कसाव निरन्तर बढ़ रहा है और सड़क एक सुरंग की भांति निकाली गई है।

पांगी घाटी में प्रवेश :-

हिमाचल में पांगी घाटी का जनजातीय क्षेत्र एक दुर्गम भू-भाग माना जाता है। लगभग 1600 वर्ग किलोमीटर में फैली इस घाटी की 15 पंचायतों मे लगभग 16 हजार की आबादी है। 900 के आस-पास नौकरी पेशा लोग इस घाटी में दूर-दराज के क्षेत्रों से आकर सरकारी क्षेत्रों में कार्यरत हैं। पांगी के पूर्व में लेह-लद्दाख की सीमा, उत्तर में जम्मू-काश्मीर का भद्रवाह इलाका, दक्षिण में लाहौल स्पिति और पूर्व में 14500 फुट ऊंचे 'साच पास' को लांघकर चम्बा की तीसा तहसील है। इस घाटी की पुरथी मिथल, साच, करेऊणी, दरवास, किलाड़, लुज की पंचायत जहां चिनाब नदी के आर-पार ही बसी है, वहीं रेई सेचू, सूण, कुमार, सुराल, करेल, साहली, करयास पंचायतें नदी

से हट कर है। पूरी घाटी में छोटे बड़े 65 गांव हैं। सभी 15 पंचायतें पिछड़ी घोषित है। घाटी में सबसे ज्यादा ऊंचाई पर बसा गाँव 'चश्क भटोरी' समुद्र तल से 3911 मीटर पर है। घाटी में प्राईमरी स्वास्थ्य सेवाओं के नाम पर ग्रामीण हस्पताल 'किलाड़' दो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 15 स्वास्थ्य केन्द्र तथा तीन शीतकालीन स्वास्थ्य केन्द्र है।

रोहलो से शुरू होकर यह घाटी जम्मू-काश्मीर के सीमा स्थल संसारी नाला तक लगभग 60 किलोमीटर चिनाब नदी के आर-पार है, जहां अधिकतर आबादी आठ हजार फुट की ऊंचाई पर बसी है वहां दोनों ओर 15 से 16 हजार फुट ऊंची बर्फ से ढकी पर्वत मालाएं यहां के जन जीवन को दूर से झांकने का मौका देती हैं। पूरी घाटी नवम्बर से मई तक शीत लहर की चपेट में रहती है। तीन-चार महीने तो बर्फ से लगभग प्रत्येक गांव ढका रहता है, क्योंकि यहां की न्यूनतम ऊंचाई 7500 फुट से कम नहीं है। चिनाब नदी के दोनों ओर की पहाड़ियों का कसाव इतना ज्यादा है कि यहां से पैदल मार्ग बड़ी कठिनता से निकाले गए हैं।

पांगी घाटी में सड़क यातायात शुरू करने के लिए सेना की सड़क निर्माण कम्पनीं ग्रीफ सक्रिय है। लोहे की तरह सख्त पहाड़ों को बारुदी सुरंगों से चीर-चीर कर यहां सड़क बनाने का काम बड़ी जोर से चल रहा है।

रोहली से पुरथी तक कोई 17-18 किलोमीटर की जीप योग्य सड़क तैयार की जा चुकी है। तेज गति से चल रहे निर्माण को देख कर ऐसा लगता है कि आगामी दो वर्ष में इस घाटी का मुख्यालय 'किलाड़' बस या जीप सेवा से जुड़ जायेगा। इस सड़क का निर्माण करेऊणी पंचायत व किलाड़ पंचायत में भी तेजी से जारी है। साल के 5-6 महीनों में जब यह भू-भाग शेष विश्व से पूरी तरह कट जाता है तो यहां के अत्यावश्यक आवागमन के लिए पठानकोट से किलाड़ हैलीकाप्टर की सेवा चलाई जाती है, जो महीने में दो बार सुलभ है।

15 से 20 लोग विमान सेवा का लाभ अति आवश्यक कार्यों के लिए कर पाते हैं। यहां का कर्मचारी वर्ग इस विमान सेवा को महीने में चार बार करने की मांग कर रहा है ताकि कर्मचारी भी इसका पूरा लाभ ले सकें।

पांगी घाटी में आवागमन के लिए रास्ता तैयार करने और खच्चर मार्ग को सुधारने के लिए लोक निर्माण विभाग कार्य करता है। इसके अतिरिक्त किलाड़ से चम्बा की ओर साच पास की तरफ कोई 25 किलोमीटर लम्बी सड़क भी इस विभाग ने बनाई है, जहां पर हिमाचल पथ परिवहन ने एक जीप अक्तूबर, 1987 से स्थानीय आवगमन के लिए चला रखी है। यह जीप हैलीकाप्टर के जरिए पठानकोट से किलाड़ पहुंचाई गई है साल के चार या पांच महीने यह जीप साच पास लांघकर जिला मुख्यालय चम्बा पहुंचने वाले लोगों को 20-25 किलोमीटर तक सवारी की सुविधा देती है।

पांगी घाटी के मुख्यालय किलाड़ से जिला मुख्यालय चम्बा पहुंचने के लिए 14500 फुट ऊंचा 'साच पास' जो 4 या 5 महीने ही खुलता है, लांघना पड़ता है और यह रास्ता लगभग 32 कि. मी.लम्बा बहुत कठिन है। यहां का ज्यादातर आवा-गमन वाया लाहौल ही सुलभ है क्योंकि लाहौल घाटी के लिए 13000 फुट ऊंचे रोहतांग पास पर सड़क की सुविधा है और यह पास कई बार 8-9 महीने भी खुला रहता है। वाया लाहौल इस घाटी के जिला मुख्यालय चम्बा की दूरी लगभग 655 कि. मी. है।

चम्बा का जनजातीय भू-भाग जो हिमाचल के कठिनतम क्षेत्रों में एक है, जम्मू-काश्मीर के लम्बे मार्ग से जुड़ने के लिए भी प्रयत्नशील है। एक सडक जम्मू-काश्मीर की ओर से चिनाब नदी के साथ-साथ अठोली (विश्वताड़) तक बन चुकी है, जो किलाड़ से लगभग 65 किलोमीटर दूर है।

पांगी घाटी का मुख्यालय किलाड़ 8450 फुट ऊंचाई पर बसा खूबसूरत मिनी नगर बन चुका है। यहां से 20-25 कि. मी.

सोमसी

दूर सुराल भटोरी एक और सुन्दर वैली है, जो पांगी का ही हिस्सा है। इसो घाटी का अन्तिम गांव चश्क भटोरी-लेह की सीमा से जुड़ता है।

आस्था का प्रधान केन्द्र मिंधल मन्दिर :-

हिमाचल के अन्य भागों की तरह पांगी घाटी के भी प्रत्येक गांव में अपना देवता होता है। इसे लोग सुबह शाम अपनी दिनचर्या के मुताबिक पूजते है। पांगी घाटी के मन्दिरों की शैली अपने आप में अनोखी हैं। त्रिभुजाकार मन्दिर जिनकी छतें लकड़ी की बनी होती हैं, बहुत अधिक ढलान लिए होती है जोकि इतनी ढलानदार बनाई होती हैं कि बर्फ तो क्या पानी की एक बूंद भी इस पर ठहर न सके, मन्दिरों के अग्रभाग में लगी लकड़ी पर नक्काशी का रिवाज भी है। मन्दिरों के आगे बहुत संख्या में घंटिया चढ़ाने का रिवाज भी इस घाटी में बहुत है। बलि किए गए भेड़-बकरों के सिर, सींग और लोहे के असंख्य प्रकार के छल्ले-कड़े भी इन मन्दिरों का श्रृंगार है। मन्दिर में लगाए कई-कई कलश बड़े सुन्दर व आकर्षक लगते हैं। सभी मन्दिर लकड़ी, मिट्टी और पत्थर से तैयार किए गए है।

पांगी घाटी में शोहर, फिंडपार करेऊणी, मिंधल के अलावा किलाड़ में भी तीन मन्दिर इसी तरह के है। मान्यता की दृष्टि से मिंधल माता का मन्दिर पूरी घाटी के लोगों की आस्थाओं से ज्यादा जुड़ा है। किलाड़ का नाग मन्दिर भी अक्सर श्रद्धालुओं की गहमागहमी में रहता है। यहां के 'करेऊणी' गांव के नीचे जंगल में बना नाग मन्दिर भी बहुत आकर्षक हैं।

किसी समय इस मिंधल गांव में एक बुढ़िया रहती थी। वह विधवा थी। उसके सात पुत्र थे जो सभी विवाहित थे। बुढ़िया प्रायः घर में रहकर खेतों में फसलबाड़ी का काम करने गए अपने पुत्रों व वधुओं के लिए खाना इत्यादि तैयार करती थी। एक बार खाना बनाते समय बुढ़िया ने देखा कि चूल्हे से कोई पत्थर नुमा चीज उभर रही है। उसने उसे

चिमटे से दबा दिया। मगर यह सिलसिला रोजाना जारी रहने लगा। एक दिन वह काले रंग का पत्थर चूल्हे में ज्यादा ही उभर कर बाहर आया, जिससे बुढ़िया डर गई। तभी चूल्हे से आवाज़ आई डरो नहीं मैं चामुंड़ा हूं और आपके घर में प्रकट होना चाहती हूं। यह सुनकर खाना बनाना छोड़ बुढ़िया खेतों की ओर भागी, जहां उसके पुत्र व बहुए काम कर रहे थे। मां को भागते-भागते आता देख पुत्रों ने पूछा, मां क्या बात है? मां बोली बेटो घर चलो, मां चामुंड़ा प्रकट हुई है। लेकिन सबने उसकी बात पर विश्वास करने के बजाय उसे भला बुरा कहा। उसके पुत्रों ने कहा कि यह सब बकवास है। अगर चामुंड़ा मां है और उसमें ताकत है तो वह यहां खेतों में आकर हल चलाए। ये लोग एक बैल के मर जाने से एक ही बैल से हल जोत रहे थे। उन्होंने बुढ़िया को कहा, मां तू सठिया गई है जाओ और खाना आदि तैयार करो। हमें काम करने दो। डरी सहमी बुढ़िया घर लौटी तब फिर चमुंड़ा मां बोली तेरे बेटों ने मेरा अनादर किया है, मैं शाप देती हूं कि वे सब वहीं पर पत्थर बन जाएं और इस गांव के सब लोग आज के बाद एक ही बैल से हल जोतेगें, दूसरा बैल अगर साथ जोड़ा तो मर जाएगा। उसी क्षण उसके सब पुत्र व बहुए शिलाओं में बदल गए। शाप सुनकर बुढ़िया गांव की ओर भागी। लोग मजे से चारपाईयों पर आराम फरमाते सूत कात रहे थे। सब ने बुढ़िया की बात का मजाक बनाया।

बुढ़िया थक हार कर, फिर लौटी और मां चामुंडा से से प्रार्थना करने लगी। मां असहाय हो गई हूं मुझे अपनी शरण में ले लो और अब मैं जीना नहीं चाहती, मुझे भी पत्थर बनने का शाप दे दो। मां ने कहा कि इस गांव ने मेरा अपमान किया हैं चामुंड़ा ने अपने अपमान पर उन्हें शाप दे दिया कि आज के बाद इस गांव का कोई व्यक्ति चारपाई पर नहीं सो सकेगा और न ही उसका सूत कातने का धन्धा फले-फूलेगा। गांव वालो ने जब यह सुना और बुढ़िया के पुत्रों और उनकी पत्नियों के पत्थर बनने की बात सुनी तो सब उस ओर भागे। सारा दृश्य अपनी आंखों से देखा तो मां चामुंड़ा

से माफी मांगने लगे। लोगों ने कहा कि मां हम आपके नाम से यहां एक मन्दिर बना देंगे। हमें क्षमा कर दो। बुढ़िया के आग्रह से प्रसन्न होकर मां चामुंड़ा ने बुढ़िया को भी उसी स्थल पर प्रस्तर मूर्ति बना दिया। आज भी चामुंड़ा मां की मूर्ति के साथ बुढ़िया की प्रणाम की मुद्रा में मूर्ति इस मन्दिर के गर्भगृह में है।

गांव मिन्धल में मां चामुंड़ा की आज्ञा से आज भी कोई व्यक्ति चारपाई पर नहीं सोता। सभी किसान एक बैल से खेती करते हैं जो एक आश्चर्यजनक बात है। पूरी घाटी में सबसे बड़ा मन्दिर माता चामुंड़ा मिन्धल का ही है।

हैरानी की बात है कि पांगी घाटी में कभी कोई प्राकृतिक विपदा नहीं आती। सारी घाटी सदैव खुशहाल रहती है लोग इसे माता मिधल का ही आशीर्वाद मानते हैं?

इस मन्दिर स्थल पर भादों महीने की पूर्णमासी को भारी मेला लगता है। कई देवताओं के रथ भी इस मेले में आते हैं। इस मेले की तैयारी काफी समय पहले शुरू हो जाती है। मिन्धल माता के इस मन्दिर में बलि प्रथा का काफी रिवाज है इस मन्दिर के अग्रभाग पर पहाड़ी शैली की अनोखी काष्ठ कला उत्कीर्ण की गई है यहां के प्रशासन ने मिधल माता के मन्दिर के पुरातत्व पर भी चोट की हैं इसकी लकड़ी की छतों को उखाड़ कर टीन की चादरें लगा दी है जो यहां की शैली के बिल्कुल विपरीत है।

हिमाचल सरकार को चाहिए कि वह पांगी के हजारों लोगों की आस्था से जुड़ें मिधल के इस मन्दिर के पुरातत्व को लौटाएं और उसकी शैली को पुनः बहाल करे।

पगंवाली जनजीवन की झलक :-

गद्दियों व गुज्जरों की तरह पांगी के लोग अपने घरों से बाहर नहीं जाते। सर्दियों में भी बर्फ व शीत के बावजूद

पांगीवासी अपने घरों में रहते है। यहां की अधिकतर भूमि में एक ही फसल होती है, क्योंकि समूचा भूमण्डल पांच-छः महीने बर्फ से ढका रहता है। इन दोनों के लिए अनाज व पशुओं के लिए घास-फूस व चारा पहले ही घरों में संग्रह करके रख लिया जाता हैं।

यहां फूलन, मक्की, जौ, चणई व आलू की फसले खास-तौर से होती है। लोग मेहनतकश है और खेतों में हाड़तोड़ मेहनत करते है। फिर भी साल भर के लिए अनाज बहुत कम लोगों के पास ही होता है। पशुपालन में चूर, चूरी याक व भेड़-बकरियां ज्यादातर सभी पांगी निवासी पालते है। गांव मिधल को छोड़ बाकी सब जगह दो बैलों से ही खेती की जाती है। मिन्धल माता के अभिशाप के कारण इस गांव में सभी लोग एक बैल से ही हल जोतते है।

पांगी घाटी का पहरावा काफी अलग है। पंगवाली औरतें आभूषण पहनने की काफी शौकीन है। एक विशेष प्रकार का डब्बेदार पट्टू (लूंगी) बांधें सिर पर गोल टिकियों की तरह टोपी, जिसे जोजी कहते है, के साथ बहुत आकर्षक वेश-भूषा लिए होती है। कानों में दर्जनों मुरकियां शटड़ू-शकली, नाक में लौंग, बाहों में टोके व बगें और कगणू, गले में डोडमाला और कई विशेष पारम्परिक गहने यहां की औरतों का श्रृंगार है। औरतों के मुकाबले मर्दों का लिबास काफी सादा होता है। पगंवाली सफेद टोपी, ऊनी कोट, पजामा इनका मुख्य पहनावा है ज्यादातर वस्त्र यह लोग खुद तैयार करते है। डिजाइन-दार कंबल, पट्टू आदि गांवों में एक कुटीर उद्योगों की तरह तैयार किए जाते है। इस घाटी में स्लेंवनुमा मिट्टी की छतों वाले मकान बने होते है। पशुओं के चारे को सर्दियों के लिए छतों पर इक्ट्ठा ढेर लगाकर रखा जाता है। सर्दियों के लिए लकडियों के ढेर भी छतों पर ही रखे होते हैं। नाममात्र की खिड़कियों वाले मकान मिट्टी और लकड़ी के बने होते है। पांगी घाटी में जातिवाद, छुआछूत जैसी कोई बात नहीं है। ब्राह्मण, राजपूत, और लोहार जातियों का यहां अधिपत्य हैं।

लोग मेलों, त्यौहारों शादी-विवाह, उत्सवों पर मिल बैठ कर नाचते गाते हैं जो आदि से बनी विशेष प्रकार की शराब, जिसे मात्र या मुहरी कहा जाता है, का सेवन काफी लोकप्रिय है। मनोरंजन के नाम पर यहां के मेले त्यौहार लोगों को हर वर्ष आनन्दित करते है।

हिमाचल प्रदेश का यह भू-भाग रहन-सहन के हिसाब से भी कठोर माना जाता है और किसी कर्मचारी का तबादला अगर पांगी हो जाए तो उसे सरकारी सजा माना जाता है। लेकिन अगर सुविधाओं की दृष्टी से देखा जाए तो ऐसी कोई बात नहीं है। यहां के कर्मचारियों को वेतन के अतिरिक्त सी० ए०, शीतकालिन भत्ता आदि की सुविधाएं सर्वाधिक है। यहां पर मिलने वाला राशन भी ग्राम दामों पर लोगों और कर्मचारियों को उपलब्ध होता है। रोचक बात यह है कि किलाड़ जो इस घाटी का मुख्यालय है के लिए प्रति क्विंटल किराया 400 रु० से 600 रु० तक पड़ता है और सुई से ले कर बडी पाईपों तक सारा सामान घोड़े, खच्चरों, मजदूरों और भेड़-बकरियों पर पहुंचाया जाता है, लेकिन यह सारा खर्चा सरकारी अनुदान से पूरा किया जाता है। सरकार इस जन-जातीय क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों से कहीं अधिक पैसा खर्च कर रही है। आज़ किलाड़ में सीमेंट की एक बोरी 350 रु० के करीब खर्चे में पहुंचती है। फिर भी वहां बन रहे धड़ाधड़ भवन आश्चर्य की बात है। हां एक बात अवश्य अटपटी लगती है कि सरकार बेतहाशा धन मात्र सीमैंट, लोहे की चादरें पाईपों सेनेटरी के सामान्य व अन्य आधुनिक साज-सज्जा के नाम पर वहां खर्च कर रही है। क्या उस घाटी के भौगोलिक परिवेश को देखते हुए वहां ये भवन बिना सीमेंट या लोहे के नहीं बन सकते? या फिर वहां के जनजीवन और जलवायु के लिहाज से वहां पत्थर मिट्टी के मकान उचित नहीं? क्या विकास का नाम सीमेंट लोहे और चादरों से बने मकान ही है, अगर किसी आदमी को सीधे किलाड़ में जा कर उतार दिया जाए तो वह वहां की चकाचौंध और आधुनिक विकास को देखकर कभी विश्वास नहीं करेगा कि यहां के विकास

में लगी एक-एक ईंट मीलो-मील दूर पीठ पर लाद कर लाई गई होगी।

यहां हर आवश्यक सामान लकड़ी कोयला, चावल, दाल, खांड, दूध घी, कन्ट्रोल रेट पर उपलब्ध करवाया जाता है। सर्दियों में यहां पर हैलीकाप्टर की सेवा किलाड़ और पठानकोट के बीच सुलभ है। यहां स्थित आवासीय आयुक्त को स्वतन्त्र रूप से काफी अधिकार प्राप्त हैं। धार्मिक आस्थाओं से जुड़ी सारी पांगी में बलि प्रथा का रिवाज भी है। हिमाचल के अन्य भागों की तरह यहां भी खास उत्सवों पर्वों या मनौतियों के रूप में पशु बलियां दी जाती है। लोग बाहरी व्यक्तियों के साथ बहुत मेल-जोल नहीं रखते बल्कि बातचीत करने में झिझक महसूस करते हैं।

पांगी घाटी में चार हाई स्कूल, एक वरिष्ठ माध्यमिक स्कूल व कई मिडल व प्राथमिक पाठशालाएं है। लेकिन फिर भी धनाभाव या फिर संकोचवश बहुत कम बच्चे ही शिक्षा ग्रहण कर रहे है। सरकार ने यहां बच्चों को मुफ्त शिक्षा की सुविधा दे रखी हैं और नौकरियों में भी बाकायदा आरक्षण दे रखा है। फिर भी बहुत कम लोग इस घाटी से सरकारी सेवा में है और जो हैं, वह भी प्रदेश व देश के अन्य भागों में लगे हैं। पांगी घाटी में स्थानीय लोग नाममात्र ही सरकारी सेवा में है।

कभी विकट और कठिनतम समझे जाने वाले इन क्षेत्रों को नजदीक से देख कर अब ऐसा ही माना जाना गलत होगा। लाहौल घाटी, पट्टन घाटी, पांगी घाटी को जाने वाले मार्ग पर आने वाले दर्रे ही कठिन है अन्यथा यहां बहुत कुछ है। जिसे प्राकृतिक सौन्दर्य, पुरातत्व या कला व संस्कृति की दृष्टि से अभी देखा-परखा जाना है।

●

संक्षिप्त परिचय

प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत बांठडा-संक्षिप्त परिचय

(गांव मलवाणा, जिला मण्डी के सन्दर्भ में)

रमेश जसरोटिया

प्रदेश की लोक नाट्य परम्परा में बांठडा का महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित स्थान है। रगोत्पत्ति में हास्य की अलग विशिष्टता है। माना जाता है कि हास्य मानव जीवन का अनिवार्य अंग है। इसके बिना जीवन नीरस व बोझिल अनुभव होता है। तनाव मुक्ति व दीर्घायु के लिए मानव जीवन में हंसी का होना उतना ही जरुरी हैं जितना कि जीवन के लिए वायु।

प्रदेश में प्रचलित लोक नाट्यों में अक्सर हास्य रस का समावेश दिखाई पड़ता है। अपनी चुस्त संवाद शैली के कारण ये दर्शकों को बरबस हंसा देने में सक्षम है। यह नाट्य चाहे कुल्लू का हरण हो या चम्बा का हराणातर, सोलन-महासू (वर्तमान शिमला) और सिरमौर का करियाला हो या बिलासपुर का धाजा, स्वांग, मण्डी-सुकेत का बांठडा हो या कांगड़ा का भगत या फिर ऊना का बौरा हो अथवा किन्नौर का होरिंग फो सभी में हास्य का समावेश होता है। इन नाट्यों में किए जाने वाले स्वांग दर्शकों को हंसा कर लोट-पोट कर देते हैं। (बशर्त कि दर्शक उनके संवादों को समझ सके।)

मण्डी-सुकेत में बांठडा का प्रचलन है। ऐसा माना जाता है कि सुकेत रियासत के राजा वीरसेन के समय इस नाट्य

की उत्पत्ति हुई। श्री मुरारी शर्मा अपनी पुस्तक लोक नाट्य 'बांठडा एवं बुढड़ा एक परिचय में' लिखते हैं कि—जनश्रुति के अनुसार सुकेत के राजा वीरसेन के समय लोक अनपढ़ थे। राजा इस बात से परेशान था। उन्होंने एक संगीतज्ञ तथा गायक नरेन्द्र को इस काम के लिए नियुक्त किया। नरेन्द्र ने संगीत और गायन के माध्यम से शिक्षा का प्रसार किया, इसे राजा ने बणथड़ा का नाम दिया...... बाद में यही बणथड़ा शब्द "बांठड़ा" बना, पर यह अवधारणा तथ्य नहीं मानी जा सकती क्योंकि प्रदेश में प्रचलित अन्य लोक नाट्यों में स्वांग प्रस्तुति लगभग वैसी ही है जैसी कि इसमें। हां यह हो सकता है कि राजा वीरसेन के समय इसका विकास प्रसार हुआ हो और राजाश्रय प्राप्त होने के कारण इसे प्रतिष्ठित स्थान मिला हो। चाहे कुछ भी हो लोक नाट्य प्रदेश की प्राचीन परम्परा है और जनसमुदाय के मनोरंजनार्थ इसकी उत्पत्ति हुई है। राजाओं/सामन्तों के समय विकास-प्रसार हुआ और इसे आवश्यक स्थान प्राप्त हुआ।

मण्डी जिला में मझवाड़, बाड़सू, बटेड़ा, मलवाणा, रनोर, देवधार और रंधाड़ा आदि स्थान बांठड़ा के विकास-प्रसार के केन्द्र रहे हैं। देवधार, रंधाड़ा में अब इसका प्रचलन समाप्त हो चुका है। बाकि स्थानों पर यह परम्परा अन्तिम सासें ले रही हैं।

सभी लोक नाट्यों को आस्थाओं से जोड़ा गया है। इसे मास विशेष और अवसर विशेष से प्रति वर्ष आरम्भ किया जाता है। मलवाणा (ज़िला मण्डी) में इस नाट्य का प्रारम्भ दीपावली की सायं से होता है। दीपावली से एक दिन पूर्व मलवाणा से लगभग एक कि. मी. दूर "बणग्रांव" स्थित देवी मनसा के मन्दिर में जगराते का आयोजन किया जाता है। इस जगराते में मनसा देवी क्षेत्र में आने वाले-रठोहा, मलवाणा, टिक्कर, करसोग, नडोल, नौण, वढियाल, पिपली कथुआली, चण्डीयाल, गौड़ा व गागल गांवों के लोग आते हैं। इसमें उक्त गांवों के प्रत्येक घर से कम से कम एक व्यक्ति का सम्मिलित होना आवश्यक है। जगराते को स्थानीय बोली में "जाग"

कहते हैं। उपस्थित जन आधी रात तक भजन कीर्तन करते हैं। इसके पश्चात् गूर-खेल प्रारम्भ होता है। गूर, जिसमें देवी का रूप माने जाने का विश्वास किया जाता है, से स्थानीय क्षेत्र की समस्याओं व उसके निवारण के विषय में ही अधिकतर पूछा जाता है।

भजन कीर्तन का यह सिलसिला रात चौथे पहर तक चलता है। अगले दिन का प्रथम पहर आरम्भ होने के पश्चात् देवी मनसा की प्रातः कालीन पूजा होती है। पूजा की समाप्ति के बाद सभी लोग अपने-अपने घरों को वापिस चले जाते हैं। वापिस आती बार देवी का रथ भी इनके साथ होता है जिसे ये गांव में एक स्थान विशेष (इस गांव में देवी के भण्डार) में लाकर रख देते हैं।

तद्पश्चात् गांव के लोग अपने नित्य कार्यों से फारिग होकर दोपहर बाद उस स्थान, जहां देवी का रथ रखा होता है, पर एकत्रित होते हैं और जलूस की शक्ल में रथ को नौण स्थित "नागधार" स्थान में ले आते हैं। इसी स्थान पर मेला आरम्भ होता है। इस समय तक यहां शारी के "बाला कामेश्वर" काण्डी तारपूर से 'काण्डी बाला कामेश्वर,' टिक्कर के "बाला कामेश्वर" बेहना से "भराड़ी देवी" व लघवार से "रूपेश्वरी" देवी मेले की शोभा बढ़ाने पहुंच जाते हैं। इस मेले में आने के लिए उक्त सभी देवी देवताओं को देवी मनसा की ओर से निमन्त्रण भेजा गया होता है, जिसे ये परम्परा के तौर पर स्वीकार कर इस मेले में आते हैं। समस्त उपस्थित देवी देवताओं का पूजन होता है। इस अवसर पर बकरे की बलि दिये जाने का भी प्रावधान है। इसके पश्चात् स्थानीय मन्दिर कमेटी द्वारा अतिथि देवताओं को भेंट की जाने वाली वस्तुओं का निर्धारण किया जाता है।

शाम को भेंट स्वरूप दी गई वस्तुओं, जिनमें अनाज, चद्दरे व धन आदि मुख्यतयः होते हैं को तीन देवताओं को छोड़कर शेष सभी देवता प्राप्त कर अपने-अपने मूल स्थानों को वापिस

चले जाते हैं शेष तीन देवता शारी बाला कामेश्वर, लघवार की रूपेश्वरी देवी व काण्ड़ी के 'कामेश्वर'' इस दिन मनसा देवी के साथ उनके भण्डार में रहते हैं। इस दिन ठहरने व इनके साथ आए लोगों के आवास व खानपान की व्यवस्था, मलवाणा वासियों द्वारा ही की जाती है।

इसी दिन गांव के बाजगी अथवा बजन्तरी (वादक) अपने वाद्य यन्त्रों को बजाते हुए मलवाणा क्षेत्र के घर में जाकर अनाज इक्ट्ठा करते हैं। प्रत्येक घर से दो-दो बट्टी (एक बट्टी लगभग दो कि. ग्रा.) अनाज, मक्की अथवा धान के रूप में दिया जाता है। अनाज की उगाही के पश्चात् सभी वादक एक स्थान जहां बांठड़े का आयोजन किया जाना होता है, इक्ट्ठे होकर बेल (शुभ धुन) बजाते हैं और बांठड़ा का आरम्भ हो जाता है।

बांठड़ा में अक्सर दस स्वांगों की प्रस्तुति की जाती है। प्रत्येक स्वांग का प्रारम्भ नृत्य और अन्त गायन से होता है। किसी-किसी स्वांग के मध्य में भी गायन होता है इसमें तीन वाद्य यन्त्र शहनाई, नगारा व कांसी ही बजाए जाते हैं। कलाकारों द्वारा विभिन्न स्वांगों के परिधान, प्रतीक रूप में ही पहने जाते हैं और उन्हीं स्वांगों के अनुरूप ही रुपान्तरण किया जाता है। इस लोक नाट्य में एक विशेषता यह भी है कि प्रत्येक स्वांग में चौकीदार पात्र अवश्य होता है जो अन्य स्वांगियों विशेषकर मुख्य स्वांगी से सवाल-जवाब करता है। संवादों की इस प्रक्रिया के माध्यम से ही हास्योत्पत्ति के प्रयास किए जाते हैं। यही हास्य पैदा करने की क्षमता किसी भी बांठड़ा दल की लोकप्रियता का मापदण्ड है।

बांठड़ा के अन्तर्गत निम्नलिखित पारम्परिक स्वांगों का आज भी प्रचलन है :-

हरिरंग चन्द्रावली, माल, मनमोहनी बुजहु, गुरू चेला तथा आशा साब मेम, दादी पौत्र व ऊंटवान, साह साहणी जिसे खत्री-खत्रेणी भी कहते हैं, नाई, गद्दी गद्दण तथा किरड़ू

देव आदि।

हरिरंग :- अर्थात भगवान का रूप। इसमें एक कलाकार भगवान कृष्ण का रूप धारण (स्वांग) कर खुले प्रांगण में आता हैं। उसके साथ दो सखियां भी दाएं बाएं खड़ी हो जाती हैं। इन सखियों को चंद्रौली (अथवा चन्द्रावली) कहा जाता है। ये सभी नाचते हैं। इनके नाचने की एक विशेष शैली होती है। चंद्रौली अपने हाथों को बारी-बारी से अपने नाक अथवा गाल पर रख कर अपने इर्द-गिर्द चक्कर लगाती है। स्वांग को भगवान रूप देकर और चंद्रौली को उक्त प्रकार से नचाना एक तान्त्रिक प्रक्रिया मानी गई है जो बांठड़े में किसी भी प्रकार की अनहोनी से बचने के लिए की जाती है। इसे मंच (जो खुला प्रांगण होता है) को बांधने के लिए किया जाना माना जा सकता है। ताकि कोई अनिष्ट आदि न हो और सारा बांठड़ा सुचारू रूप से चले, क्योंकि हरिरंग बेशक स्वांग रूप में प्रस्तुत होता है पर बांठड़े का असली उद्देय हास्योपत्ति करना इस स्वांग के माध्यम को नहीं दिखाई देता। कृष्ण अपने व्यक्तित्व में अनेक अर्थ लिए हुए हैं। हरिरंग चंद्रौली के पीछे खड़े गायक-वादक गाते बजाते हैं।

मालः- हरिरंग के पश्चात् अगला स्वांग माल होता है। इसमें एक कलाकार पहाड़ी वेशभूषा में मंच पर आता है और विभिन्न क्रियाओं से नृत्य करता है। उसके नाचते समय एक चौकीदार आ जाता है। पहाड़िया नाच बंद कर चौकीदार को विशेष भाव भगिमाएं दर्शाता हुआ घूरता है। चौकीदार इस पहाडिए से गांव में आने का कारण पूछता है। पहाड़िया ऐसे संवादों का सहारा लेकर उत्तर देता है कि दर्शक हंसते-हंसते लोटपोट हो जाते हैं।

मनमोहनी बुजाड़ः- इस स्वांग की कथा घर से भागे पति की तलाश में अपने बच्चे सहित आई एक औरत की है। औरत की चौकीदार से मुलाकात होती है। चौकीदार उसके आने का कारण जान, गांव में उसके पति की खोज करता है।

अन्ततः पति-पत्नी का मिलन होता है। चौकीदार के साथ हुए औरत के वार्तालाप और पति मिलने के पश्चात बोले गए संवाद हास्य उत्पन्न करते है।

गुरु चेला तथा बाशा :- यह अपेक्षाकृत अधिक समय तक अभिनीत किए जाने वाला स्वांग है। इस स्वांग के माध्यम से न केवल अपनी जिम्मेवारी से मुंह चुराने वाले पति पर व्यंग्य है बल्कि आध्यात्मिक शिक्षा देने का भी प्रयास किया है। एक पति अपने सामाजिक कर्त्तव्यों से विमुख होकर अपनी पत्नी को छोड़कर एक साधू की शरण में चला जाता है और उसे भी अपना चेला बनाने का आग्रह करता है। गुरू द्वारा पूछे जाने वह स्वयं को कंवारा बताता है और गुरू से दक्षिणा भी प्राप्त करता है। पत्नी अपने पति को ढूंढती आती है। चौकीदार की सहायता से वह पति को तलाश कर लेती है। गुरू चेले पत्नी और चौकीदार के मध्य संवाद होते है। ये संवाद अपनी सहज शैली में भी "नाविक के तीर" लिए होते हैं। अततः गुरू द्वारा पारिवारिक जीवन के प्रति कर्त्तव्य की शिक्षा दी जाती है और पत्नी अपने पति को घर वापिस ले जाने में सफल होती है।

सा"ब मेम जर्मन और नौकर :- एक अंग्रेज जोड़ी घूमते हुए गांव आता है। गांव में प्रविष्ट होते ही चौकीदार से मुलाकात होती है। सा"ब गांव में आने का मन्तव्य बताता है और किसी नौकर के बारे में पूछता है जो ठहराव के दिनों में उनकी सेवा कर सके और भोजन आदि बना दे। गांव में नए आए एक व्यक्ति को चौकीदार सा"ब मेम के यहां नौकर रख देता है। नौकर अपने मसखरेपन से न केवल अंग्रेज जोड़ी को परेशान करता है बल्कि दर्शकों को हंसाता भी खूब है। वहीं एक जर्मन आता है। अंग्रेज और जर्मन में तकरार होती है, दोनों एक दूसरे को ललकारते हैं। लड़ाई में अंग्रेज मर जाता है और जर्मन उसकी मेम को अपने पास रख लेता है। कभी-कभी स्‍ांग थोड़ा बदल कर प्रस्तुत किया जाता है। लड़ाई में अंग्रेज और जर्मन मारे जाते हैं और नौकर मेम को अपने साथ ले

जाता है। यह स्वांग जहां यूरोपीय सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करता है वहीं अभिनेताओं द्वारा पहने परिधानों, उन द्वारा बोले संवादों व उनकी अभिनय शैली के माध्यम से सामाजिक को हंसाने का प्रयास भी करता है।

दादी पौत्र व ऊंटवान :- अपनी बीमार दादी को लेकर पौत्र उसका उपचार करवाने जा रहा होता है। दादी बूढ़ी व कृशकाया होने के कारण चल पाने में सक्षम नहीं हैं। गांव का चौकीदार दादी की सवारी के लिए एक ऊंट की व्यवस्था करवाता है। ऊंटवान दादी को इस प्रकार ऊंट पर चढ़ाता है कि वह दूसरी ओर गिर जाती है और अन्ततः मर जाती है। इस स्वांग में संवादों से ज्यादा कलाकारों द्वारा अभिनीत क्रियाओं से दर्शक गण को खूब हंसाया जाता हैं।

साह साहणी और नौकर :- इस स्वांग को खत्री खत्रेणी भी कहते हैं। अपनी कंजूस वृत्ति के कारण साह पैसा खर्च करना अनुचित मानता है। साहणी चौकीदार की मदद से एक ग्रामीण को जो उस कस्बे में आया होता है, घर में नौकर रखवा लेती है। साहणी की इस हरकत पर साह मन मसोस कर रह जाता है। साह ऐसी तिकड़म लगाता है कि नौकर मुफ्त में काम करने पर राजी हो जाता है। पर नौकर की चालों से साह मात खाता जाता है और अन्ततः खूब पैसा देकर अपना पीछा उस नौकर से छुड़वाता है। इस स्वांग से नौकर द्वारा पहने वस्त्र व संवाद प्रेषण दर्शकों का मनोंरजन करते हैं। तात्कालीन साहूकार वृत्ति पर किया गया यह व्यंग्य आज की व्यवस्था में भी उतना ही सटीक है।

नाई :- नाई हमारे समाज का सदियों से महत्वपूर्ण अंग रहा है। इसका बड़बोलापन उसकी पहचान है और यह बड़बोलापन कभी-कभी कितना हास्यस्पद बन जाता है इसका उदाहरण उक्त स्वांग में बाखूबी से किया जाता है। एक शहरी (कहीं कहीं अंग्रेज) अपने नौकर के साथ घूमता हुआ गांव पहुंचता है। चौकीदार से बातचीत होती है और उनके ठहरने की

व्यवस्था हो जाती है। शहरी अपनी हजामत के लिए किसी नाई का प्रबन्ध करने का आग्रह करता है। चौकीदार को एक नाई दिखाई पड़ता है। पूछने पर वह स्वयं को हजामत-विशेषज्ञ बताता है और बडे-बड़े शहरों में किए काम का दम्भ भरता है। आगे नाई द्वारा शहरी को कुर्सी पर बिठाकर उसे रस्सी से बांधना, शेविंग ब्रश के स्थान पर बूट पालिश के ब्रश का इस्तेमाल करना, उस्तरे के बजाए खुखरी से बाल काटने का अभिनय, मुंह को फव्वारा बनाकर पानी फैंकना आदि कुछ ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो दर्शकों को हंसाने में सक्षम है। शहरी द्वारा स्वयं को ऐसा प्रदर्शित करना कि मानों बकरे को जिबहा किया जा रहा है—त्रासदी भरा हास्य है और यही इस स्वांग को विशेषता भी है। यह स्वांग वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर भी चोट करता है। खास कर उन लोगों पर जो जानते कुछ नहीं और सब कुछ जानने का दम्भ भरते हैं।

गद्दी गद्दण :- एक गद्दी की दो पत्नियां हैं। दोनों गद्दी को अपनी ओर आकर्षित करना चाहती हैं। गद्दणों में आपसी मौन द्वेष है वे दोनों स्वयं को बीमार बताकर गद्दी की सहानुभूमि प्राप्त करने का प्रयास करती हैं। गद्दी परेशान है, गांव के चौकीदार की मदद से वह एक डाऊ की सेवाएं प्राप्त करता है। डाऊ गद्दणों का उपचार करता है। इस स्वांग में स्त्री द्वेष के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त जादू व टोणा उसके तथाकथित उपचार पर व्यंग्य किया गया है।

किरड़ू देव :- यह स्वांग मूलतय: ग्राम देवता, उसके रथ व उसके साथ आए कारिन्दों आदि पर है। देवता के रथ के साथ चले कारिदों की नकल, रथ के हिण्डोले लेने आदि की क्रियाओं की नकल, इस स्वांग का मुख्य उद्देय है। यह स्वांग तथाकथित गूरों, कारदारों आदि पर भी व्यंग्य करता है।

बांठड़ा हालांकि अब भी स्थानीय जनमानस से जुड़ा लोक नाट्य है पर इसका प्रचलन धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। जिस प्रकार मलवाणा में इसका आयोजन दीपावली की संध्या से

होता है उसी प्रकार मझवाड़ में भाई दूज के दिन उसका आयोजन किया जाता है। उचित प्रोत्साहन के बिना स्थानीयजनों की उदासीनता व आधुनिकता की हवा बहने के कारण बटेड़ा, देवधार और रंधाड़ा में इसका प्रचलन समाप्त हो गया है। वहां यह अतीत की बातें भर रह गया है। स्थानीय जनों से बांठड़ा के बारे में पूछने पर अपनी गौरवमय परम्परा पर इनकी आंखों में चमक आ जाती है पर गहरे सांस खींचकर समाप्त हो गई इस लोक जीवन शैली पर मात्र दु:ख भी व्यक्त करते हैं। इसका पुन: प्रचलन इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि नए लोगों की इसमें दिलचस्पी नहीं है। सही शब्दों में कहा जाए तो मझवाड़ व मलवाणा में इसका प्रचलन अभी भी है। रनोर, बदार व बड़सू में तो नाममात्र का ही बांठड़ा होता है। ऐसी ही स्थिति प्रदेश के अन्य लोकनाट्यों की भी है। समय रहते इसमें जीवन देने हेतु यदि गौर न किया गया तो शायद ये किताबी बातें ही बन कर रह जाएगी। **(प्राचीन** बांठड़ा दल, ग्राम मलवाणा डाक घर टिक्कर जिला मण्डी की पार्टी के कार्यक्रम का प्रलेखन दिनांक 5-6 जनवरी 1989 को मलवाणा (जिला मण्डी) स्थान पर अकादमी द्वारा आयोजित करवाया गया था। इस आयोजन के प्रभारी अशोक हंस तकनीकी अधिकारी थे। बांठड़ा लोक नाट्य व लुड्डी लोक नृत्य पर एक वीडियो फिलम भी अकादमी द्वारा तैयार करवाई गई थी उक्त आयोजन के मौके पर प्राप्त जानकारी के आधार पर श्री रमेश जसरोटिया द्वारा लिखे इस आलेख को पाठकों की जानकारी हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है

— संपादक

●

पुस्तक समीक्षा

मण्डी की देव संस्कृति का ऐतिहासिक दस्तावेज

भगवान देव "चैतन्य"

डॉ० विद्याचन्द ठाकुर जी जिला भाषा अधिकारी के रूप में जिला सिरमौर, सोलन, चम्बा, बिलासपुर आदि स्थानों में रहे और बड़ी आत्मीयता के साथ धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों से जुड़े रहे। इनके हिमाचल प्रदेश के सांस्कृतिक लेख यदा कदा पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। जिनमें हिमाचल की मिट्टी की सौंधी गन्ध के अतिरिक्त यहां की गौरव गरिमा भी परिलक्षित होती है। कुछ वर्षों से ये मण्डी जनपद में जिला भाषा अधिकारी के रूप में कार्यरत है। यहां पर भी इनकी सांस्कृतिक गतिविधियां अनवरत चलती रही हैं। मण्डी के विभिन्न प्राकृतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थानों पर व्यक्तिगत रूप से जाकर उनका आनन्द लेने के साथ-साथ उनकी विस्तृत जानकारी प्राप्त करके उन्हें कागजों में सुरक्षित कर लेना इनकी विशेष रूचि है। विवेच्य पुस्तक "माण्डव्य प्रभा" उनके परिश्रम और संस्कृति के प्रति दृढ़ आस्था का जीता जागता प्रतीक है।

मण्डी जनपद को छोटी काशी के नाम से पुकारा जाना इसकी सांस्कृतिक विरासत की उत्कृष्टता का प्रतीक है। मण्डी नगर के मुख्यालय में तो अनेक स्थान अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक गरिमा को अपने आप में संजोए हुए हैं ही मगर समूचे जनपद में अनेकों प्रमुख देव स्थान हैं जो समूचे हिमाचल के

लिए गौरवमय हैं। इन्हीं विभिन्न देव स्थानों में से लेखक ने मुख्य-मुख्य इक्कीस स्थानों को इस पुस्तक के लिए चुना है। इनमें महर्षि पराशर का पावन धाम, मूल मांहुनाग, शिकारी देवी, ममलेश्वर महादेव, काओ कामाक्षा, कमरू नाग, महायोगी का शक्तिपीठ, बनौणी महादेव तथा त्रिवेणी महादेव आदि भी हैं।

इन देव स्थानों की विवेचना में अनावश्यक विस्तार के स्थान पर लेखक ने "सार सार गहि लैहि, थोथा दियो उड़ाय" की उक्ति को चरितार्थ किया है। संक्षिप्तता में ही गागर में सागर की तरह प्रत्येक स्थान का हर पहलू से विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार के विषयों में आमतौर पर अनावश्यक विस्तार से लेखक का बच पाना कठिन हो जाता है। मगर इस पुस्तक के लेखक इससे पूर्णतया मुक्त हैं। लेखक ने इन प्रमुख स्थानों की केवल सूचना मात्र न देकर मुख्यालय से इनकी दूरी के साथ-साथ पूरी "सिच्युएशन" से पाठक को परिचित कराया है। इस प्रकार जहां एक ओर संस्कृति का गहन अध्ययन करने वाले पाठकों के लिए संग्रह उपयोगी है वहीं दूसरी ओर पर्यटकों के लिए सीधा और स्पष्ट मार्गदर्शन भी है। देवस्थानों का निर्माण किस शैली में हुआ है इस विवेचन के साथ-साथ ऐतिहासिकता के ऐसे तथ्य प्रस्तुत किए हैं जो इन स्थानों की प्राचीनता और यथार्थता को प्रकट करते हैं। इसके लिए लेखक ने कुछ शास्त्र प्रमाण भी जुटाए हैं। यही नहीं ऐतिहासिकता की प्रमाणिकता के लिए कुछ स्थानों पर सन् और सम्वत् भी उद्‌धृत हैं।

दन्त कथाओं और अन्य अनेक लोक गाथाओं का प्रस्तुतिकरण अत्यधिक रोचक और हृदयग्राही है। इन प्रसंगों में कहीं-कहीं अविश्वसनीयता और नाटकीयता का समावेश भी है जो इस प्रकार की जनश्रुतियों एवं दन्त कथाओं में स्वाभाविक ही होता है। इन देव स्थानों से जुड़े मेलों, पूजा पद्धतियों और श्रद्धा के कारणों का सूक्ष्म वर्णन भी विवेच्य विषय को पूर्णता की ओर ले जाने वाला है। यदा कदा प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन भी हुआ है मगर इस ओर लेखक का अधिक ध्यान नहीं

गया है। डॉ० विद्या चन्द ठाकुर जी के भूमिका में दिए गए वक्तव्य के अनुसार सभी स्थानों पर स्वयं जाकर इन्होंने सामग्री को एकत्रित किया है, इस प्रकार लेखक ने हिमाचल प्रदेश की संस्कृति को चिरस्थाई बनाने के लिए एक उत्कृष्ट कृति देकर ऐतिहासिक कार्य किया है। एक ही जनपद के विभिन्न मुख्य-मुख्य स्थानों का इतनी गहनता और रोचकता के साथ तथ्यात्मक संग्रह अपने आप में अनुपम है। ठाकुर जी की कृति "माण्डव्य प्रभा" मण्डी की देव संस्कृति का एक ऐसा दस्तावेज है जो निश्चित रूप से पुरातत्व, धर्म, संस्कृति और पर्यटन के क्षेत्र में समागृत होगी। लेखक ने भूमिका में ऐक महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न उठाया है कि आधुनिकता का सम्मोहन कहीं हमारी लोक-संस्कृति की विरासत में सेन्ध लगाकर इसे धराशाई न कर दे, इस ओर सम्बन्धित व्यक्तियों एवं विभागों को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

सहज सरल और स्थानीय शब्दों को कहीं-कहीं सहेजती हुई भाषा और रोचक शैली में लिखी गई इस पुस्तक की प्रिंटिंग और साज सज्जा भी सुन्दर है। श्री बीरबल शर्मा के चित्रों ने सोने में सुहागे जैसा हो कार्य किया है। आवरण सहित पुस्तक में कुल चौबीस चित्र है जिनसे पुस्तक के प्रसंग और भी अधिक मुखरित हो उठे हैं।

●

पुस्तक का नाम:	माण्डव्य प्रभा
लेखक का नाम:	डॉ० विद्या चन्द ठाकुर
प्रकाशक:	पुरातत्व चेतन संघ, 63/12, छाया विहार, रामनगर, मण्डी (हि. प्र.)
पृष्ट संख्या	95
मुल्य	25 रुपये

कला समीक्षा

शिमला में आयोजित कला उत्सव

डॉ० अजय कुमार सिंह

कला सृजन और अभिव्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में वर्ष 1991 का आरम्भ उल्लेखनीय है जब दिल्ली में सातवीं त्रैवार्षिकी, युवा-महोत्सव, कला मेला और अनेकों समूह और एकल प्रदर्शनियों का आयोजन हुआ। वर्ष के शुरू के कुछ महीनों में शायद ही दिल्ली कभी कलात्मक रूप से इतनी मुखर रही हो। यह एक अच्छा लक्षण है। कला सृजन की दिशा में ठीक इसके साथ यह वर्ष अपने शुरूआती महीनों में मानव सभ्यता के गहराते अन्तर्विरोध को भी रेखांकित करता है। वजह बहुत स्पष्ट है कि जब खाड़ी में युद्ध का दानव नग्न ताण्डव कर रहा था और मानवता विवश और भयाक्रान्त थी, युद्ध प्रेमियों ने पृथ्वी के पर्यावरण तथा जीवन को निगलने का कुचक्र रच लिया था तब संवेदनशील रचनाधर्मी कलाकार कहा जाने वाला प्राणी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भी भीषणतम् त्रासदी से मुंह फेरकर न जाने किस सौंदर्य को रच रहा था। यह विसंगति और बिडम्बना है जो सामाजिक और राजनैतिक बोध पर अवलाम्बित है जो कुछ भी हो यह सत्य है कि मानवजीवन अन्तर्विरोधों और अन्तर्द्वन्द से भरा है और इसी तनावपूर्ण स्थिति से कुछ सकारात्मक भी निकलता है। कला ही वह भाषा है, वह माध्यम है जो विभिन्न संस्कृतियों जातियों धर्मों और राष्ट्रों की परिधि की परिमीयता को लांघकर मानव को एकता के सूत्र में बांधती हैं। कलासृजन के सक्रिय मूलक प्रेम, सहअस्तित्व और सौन्दर्य की ऊर्जा को भी प्रस्तुत करती है उसका उद्देश्य यही

होता है कि समाज तथा मानव चेतना तमस का त्याग कर शिवम् की ओर बढ़े।

दिल्ली के युवा महोत्सव, त्रिनालय और कला मेला की पूर्वभूमिका ललितकला अकादमी ने तृतीय उत्तरक्षेत्रीय कला प्रदर्शनी 1990-91 का शिमला में आयोजन कर सुनिश्चित कर कर दी थी। कन्स्टेन्शा दी माल में आयोजित इस प्रदर्शनी ने एक बार पुनः शिमला की उस गौरवमयी परम्परा की स्मृतियों को जागृत कर दिया जिसने अमृता शेरगिल, राजकुमार और जे० स्वामीनाथन आदि कलाकारों तो उपजाया। शिमला जीवन्त, गतिशील किन्तु शालीन है। अतः कला यहां स्वयं स्फूर्त है। कला की इसी स्वयं स्फूर्त ऊर्जा को उत्तर भारत के 29 कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों में प्रतिबिम्बित करने का प्रयास किया है जो एक सराहनीय और स्मरणीय घटना है। प्रदर्शनी में अनेक चित्रकारों ने तकनीकी कौशल के अकेले बूते पर राह पर चलते हुए अमूर्त को आकार में बांधने का जो प्रयास किया है वो उन्हें शिल्पकार की पहचान तो देता है लेकिन सम्प्रेषण के धरातल पर उनकी विचारशून्यता को भी उजगार करता है जो उनकी कृतियों को एक मात्र नूतन कार्य घोषित करती हैं न कि कलाकृति।

कलाकृतियों में शायद सौन्दर्य अब केवल नितांत नये और अपरिचित तथ्यों द्वारा ही निरूपित माने जाने लगे हैं जबकि कला के अन्तर्गत साधारणीकरण की प्रक्रिया में कला का उदात्तीकरण उसे सौन्दर्य और जनस्वीकृत प्रदान करता है और सौन्दर्य के लिए जन स्वीकृति अनिवार्य है। संवेदनशील और सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से यदि कलाकृतियों का अवलोकन किया जाए तो दीपक बनर्जी, मंजुला चर्तुवेदी, पी. एन. चोयल, दीपिका हाजरा सुरेन्द्र जोशी, मदन लाल, हरवंश कौर सन्धु, प्रेम सिंह की कृतियां दर्शकों के साथ एक सीधा सम्बन्ध स्थापित करती हैं। दीपक बनर्जी की एचिंग 'नादेश्वर तन्त्र' और भारतीय दर्शन के समन्वित, सैद्धान्तिक स्वरूप की व्याख्या करती है। संवेदनशीलता और भावप्रवणता की दृष्टि मंजुला चर्तुवेदी का चित्र

स्पर्श करता है जो कलाकार के अथक परिश्रम जनित और उसके रचनात्मक कौशल को प्रमाणित करता है। सन्धू जी के शिल्प कामायनी में जयशंकर प्रसाद की कामायनी की श्रद्धा या "लौंगिग" बहुत ही सहज और सरल अभिव्यक्ति है जो नारी व्यक्तित्व के और उसके सम्पूर्ण अस्तित्व के उस बिन्दु को प्रतिबिम्बित करती है जा निरन्तर पूर्णता की अभिलाषा संजोए व्याकुल किन्तु मूक है। केवल अशेषवेदना ही उसकी नियति जान पड़ती है। मंजुला के रंगों और आकारों में एक गहरा अन्तर्सम्बन्ध है जिसमें ऊर्जा भी है और एक शालीनता भी। वयोवृद्ध कलाकार श्री पी. एन. चोयल का चित्र "व्यू वन" उनकी चित्रकला यात्रा की चुनौतीपूर्ण रोमांचक उपलब्धि है। चित्रकार ने अपनी स्थापित शैली रंगयोजना और रुपाकारों से बिल्कुल अलग जाकर एक नये किस्म के लैण्डस्केप को चित्रित किया है जिसमें राजस्थानी पर्यावरण का जोशीलापन, रंगों की शोखी और ठोस यथार्थ है। उनके रंगों की ताजगी शायद पूरी कलादीर्घा में सबसे अधिक महकी-महकी जान पड़ती है।

दीपिका हाजरा का संयोजन और रंग योजना दर्शक को कुछ देर तक सफलतापूर्वक बांधे रखती है और गांव की सहज और सपाट जिन्दगी का एक सुन्दर आईना पेश करती है। युवा कलाकार सुरेन्द्र जोशी विशेष रूप से बधाई के पात्र हैं क्यों कि उन्होंने हमारी तत्कालीन परिवेश और जीवन के उस कड़वे सच को फ्रेम में बांधा है जिसके चलते सारे मानवीय और नैतिक मूल्य ध्वस्त हो गये हैं और मानवता ऐसे अन्धे कुएं की ओर है, जहां से उबर पाना मुश्किल है। जोशी के आकार उनकी प्रविधि और रंगयोजना कलाकार की सामाजिक प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है।

मूर्तिशिल्प के सन्दर्भ में मदनलाल का संगमरमर में तराशा शिल्प अपनी ओर आकर्षित करता है क्योंकि रूपाकार अपनी तरलता के द्वारा जलीय संरचना और उसके विकास को प्रदर्शित करता है। हरभजन कौर संधू का काष्ठशिल्प परिपक्वता के उस स्तर को

इला तो प्रत्यक्ष नहीं होती है लेकिन नारीत्व की लयात्मकता और सुरभि कन्टूर रेखाओं पर निरन्तर प्रवाहित जान पड़ती है शिल्प का खोखला स्थान उस अदृश्य संहति का एहसास कराता है जो हमारे बीच है अन्चीन्हा सा लेकिन ऊर्जावान। सन्धूजी की कामायनी सचमुच काष्ठ में तराशी कविता है।

किसी भी कला कृति और कला प्रदर्शनी की समीक्षा एक दुरुह और जोखिम भरा कार्य होता है और प्रायः यह अर्थ लगाया जाता है कि समीक्षा या आलोचना व्यक्तिनिष्ठ है। इस आलोचना से सम्बन्धित आंकड़ों के संकलन को अधिक वैज्ञानिकता प्रदान करने के लिए कला दीर्घा में रखी हुई 'विजिट्रस कमेन्ट्स बुक' का भी सर्वेक्षण किया गया। आम दर्शकों की टिप्पणियों से यह स्पष्ट हुआ है कि सहज संप्रेषणीयता के लिए आकृति की वापसी आवश्यक है और आकृतियां भी नये कलेवर में हों किन्तु पहचानी हुई, वर्ना कलाकृति केवल कलाकार की व्यक्तिनिष्ठ अभिव्यक्ति मात्र रह जाती है। भले ही अकादमी उन्हें महिमा मण्डित करती रहे लेकिन वे जन-जन के लिए अर्थहीन और खोखली रचना मात्र रहती है।

●

अकादमी की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियां

अगस्त, 1991 से अक्तूबर 1991 तक

4 अगस्त 1991 स्व० लालचन्द प्रार्थी कला केन्द्र कुल्लू में डॉ० यशवन्तसिंह परमार जयन्ती का आयोजन किया गया। समारोह का उद्‌घाटन कुल्लू के उपायुक्त श्री जीवानन्द जीवन ने किया। दो सत्रों में आयोजित हुए इस समारोह के प्रथम सत्र में प्रो० चन्द्रवर्कर ने अपना शोध पत्र "डॉ० यशवन्तसिंह परमार द्वारा नौकरी से त्याग पत्र तथा हिमाचल निर्माण की तिथि तक विभिन्न क्षेत्रों में योगदान तथा घटना-क्रम" प्रस्तुत किया। द्वितीय सत्र में श्री किशोरी लाल वैद्य ने "डॉ० यशवन्तसिंह परमार का साहित्य, कला संचार माध्यमों के प्रति दृष्टिकोण" विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया। तृतीय सत्र में सायं वयोवृद्ध साहित्यकार श्री चन्द्रशेखर बेबस की अध्यक्षता में एक मिश्रित कवि सम्मेलन हुआ, जिसमें राज्य के विभिन्न भागों से आए कवियों ने भाग लिया।

10 अगस्त से 13 अगस्त, 1991 लाहौल स्पिति जिले के दुर्गम क्षेत्र पिनघाटी के गांव सगनम में दुर्लभ लोक नाट्य "बुछैन" का प्रलेखन की दृष्टि से विडियोकरण किया गया।

15 और 16 अगस्त, 1991 को जिला लाहौल स्पिति में दो दिवसीय केलंग जनजातीय उत्सव के अवसर पर पारम्परिक लाहौली लोक नर्तक दलों का विडियोकरण किया और दिनांक 17 व 18 अगस्त 1991 को तहसील लाहौल में तीर्थ स्थल त्रिलोकीनाथ में आयोजित किए गए 'पोरीमेला' का फिल्मीकरण किया गया। इस वर्ष इस "पोरीमेला" का आयोजन 'कुम्भ' मेले की भांति बड़े स्तर पर हुआ।

17 **सितम्बर,** 1991 अकादमी प्रकाशन समिति की बैठक आयुक्त एवं सचिव भाषा संस्कृति एवं उपसभापति अकादमी कार्यकारी परिषद की अध्यक्षता में उनके सचिवालय कक्ष में आयोजित हुई जिसमें निदेशक भाषा संस्कृति, उपसचिव वित्त

एवं सचिव अकादमी उपस्थित हुए। बैठक में भारतीय भाषा संस्थान मैसूर द्वारा प्राप्त वित्तीय सहायता से प्रकाशित किये जाने वाले शोध प्रबन्धों के मुद्राणार्थ और संस्कृत पत्रिका श्यामला के तृतीयांक के मुद्रण के लिए दिनांक 10-9-91 को खोली गई निविदाओं पर विचार किया गया।

21 **और** 22 **सितम्बर,** 1991 धर्मशाला जिला कांगड़ा के बचत भवन में "हिमाचल की विभिन्न उपभाषाओं के कारक" विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन भारतीय भाषा संस्थान मैसूर के सहयोग से किया गया।

23 **सितम्बर से** 2 **अक्तूबर,** 1991 धर्मशाला जिला कांगड़ा के बचत भवन में "पहाड़ी बोली के स्वन विज्ञान" विषय पर 10 दिवसीय कार्यशाला का आयोजन हिमाचल अकादमी तथा भाषा संस्थान मैसूर के संयुक्त तत्वावधान में किया गया।

3 **अक्तूबर,** 1991 होटल होली-डे होम शिमला के सभागार में साहित्य की विभिन्न विधाओं के लिए वर्ष 1988, 1989 और 1991 के पूर्वघोषित पुरस्कारों को प्रदान करने के लिए पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन किया गया। श्री राधा रमण शास्त्री, माननीय शिक्षा, भाषा-संस्कृति मन्त्री हिमाचल प्रदेश ने इस अवसर पर साहित्यकारों को पुरस्कारों से सम्मानित किया। पुरस्कृत साहित्यकारों को प्रशस्ति पत्र के साथ 3100 रुपये की नकद राशि प्रदान की जाती हैं।

27 **अक्तूबर से** 31 **अक्तूबर,** 1991, हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी तथा अन्तर्राष्ट्रीय ग्रामीण सांस्कृतिक केन्द्र, दिल्ली के संयुक्त सौजन्य से प्रदेश के छात्र-छात्राओं तथा अन्य कलाकारों में भारतीय संगीत के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा तथा रूचि उत्पन्न के उद्देश्य से जिला सोलन के विभिन्न विद्यालयों में ओड़ीसी नृत्य की सुप्रसिद्ध नर्तकी श्रीमती गीता महालिक द्वारा प्रवचन एवं मंचन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया

अकादमी पुस्तकालय में :- अगस्त, 1991से अक्तूबर, 1991 तक अकादमी पुस्तकालय में विभिन्न विधाओं की 120 पुस्तकें सम्मिलित की गई। जिनमें 59 दुर्लभ/प्राचीन पाण्डुलिपियां भी शामिल है।

क्रमांक	पुस्तक का नाम	विवरण	मूल्य
		के कलामों का मजमुआ	15.00
2.	वजूद-ओ-अदम	लालचन्द प्रार्थी की गज़लों व नज़्मों का संग्रह	25.00
3.	दर्द कोहसारों का	उर्दू कहानी संग्रह	30.00
4.	नवीद-ए-सहर	स्व० सुदर्शन कौशल नरपुरी की गज़लों व नज़्मों का संकलन	40.00

ENGLISH :-

1.	Descriptive bibliography of Himachal		100.00
2.	Distant Echoes	Anthology of stories of Himachal writers	40.00
3.	A Dictionary of Pahari dialects & A Dictionary & Grammer of Kinawari (Reprint)		50.00
4.	A Descriptive Grammer and bocabulary of Chinali Dr. D. D. Sharma		40.00
5.	The Kangri central subsystems (A structural-description) Dr. A. R. Chauhan		60.00

मुख्य पृष्ठ : करसोग (मुमेल में मन्दिर परिसर में स्थापित देवी की एक दुर्लभ प्रतिमा)

छायाकार : डॉ० बी० आर० शर्मा

अन्तिम पृष्ठ : गोविन्दसागर में किस्ती बिलासपुर

छाया : आई० पाल

HAACL पंजीकरण संख्या आर.एन. 28271/75

सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला द्वारा प्रकाशित व
मै. भारतेन्दु प्रिंटिंग प्रेस, 109/5 लोअर बाजार, शिमला, दूरभाष : 3452 द्वारा मुद्रित।